TEXT CROSS WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182277
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82:08/T16S Accession No. G.H 870

Author टंडन, प्रेमनारायण।

Title संकल्प। 1946

This book should be returned on or before the date last marked below.

संकल्प

प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०, साहित्यरत्न
(रिसर्चस्कालर, लखनऊ विश्वविद्यालय)

प्रकाशक—

विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ

Checked 1969

प्रथम संस्करण, १०००

जूलाई, १९४६

Checked 1969

मूल्य, सवा रुपया

मुद्रक—

पं० गिरजाशङ्कर शुक्ल, देवता प्रेस, लखनऊ।

निवेदन

'प्रेरणा' मेरा प्रथम एकांकी-संग्रह था, 'संकल्प' दूसरा है। 'प्रेरणा' सामने रखते समय जो संकोच हो रहा था, 'संकल्प' के प्रकाशन-काल तक मुझे उससे छुटकारा मिल चुका है। कला की दृष्टि से अभीष्ट सफलता यद्यपि इस संकलन के एकांकियों में भी नहीं मिली है, तथापि पाठकों का स्वस्थ मनोरंजन इनसे होगा, इसका मुझे विश्वास है।

'गांधार-पतन' शीर्षक एकांकी के संबंध में एक निवेदन करना है। गांधार के देश-द्रोह की कहानी इतिहाससिद्ध है। स्व० 'प्रसाद' जी ने इस तथ्य को 'चंद्रगुप्त' नाटक में स्वीकार किया है। इसमें वर्णित गांधार के देशद्रोह का कारण ग्रहण करना मुझे आवश्यक नहीं जान पड़ा। आशा है कि प्रस्तुत एकांकी की नवीन कल्पना पाठक को विशेष रुचिकर प्रतीत होगी।

लखनऊ] प्रे० ना० टंडन

* सूची *

अधूरा लेख	...	५
संकल्प	...	३३
गांधार-पतन	...	६४

* अधूरा लेख *

पात्र

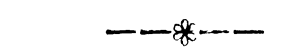

हरिश्चंद्र—कवि और कहानी-लेखक

किशोर—हरिश्चंद्र का फैशनप्रिय मित्र

निर्मला—हरिश्चंद्र की पत्नी

उषा—हरिश्चंद्र की दसवर्षीय बालिका

[स्थान—

छोटे पक्के मकान का बाहरी कमरा। बाईं ओर लेखक की मेज है जिस पर एक तरफ लकड़ी के केस में कुछ किताबें रखी हैं और दूसरी तरफ कागजों से भरी तीन-चार फाइलें हैं। इनके ऊपर हाथ से झलने का गरारीदार रंगीन पंखा रखा है। मेज पर सामने लिफाफे, पैड और चिट्ठी-पत्री रखने की दरवाजेदार छोटी रैक है जिसके दरवाजे खुले हुए हैं और काफी कागज रखे दिखाई दे रहे हैं।

रैक से मिला हुआ आगे की ओर शीशे का कलमदान है जिसमें लाल और नीली स्याही की दवातें लगी हैं। दोनों के बीच में फाउंटेनपेन की हरी स्याही रखी है। कलमदान में तीन चार साफ निब के कलम और लाल-नीली काली पेंसिलों के साथ एक चाकू है। आल्पीनों की एक डिबिया कलमदान से मिली रखी है दाहनी ओर, और बाईं ओर ट्वील का गोला है।

मेज के नीचे रद्दी कागजों की जालीदार तार की टोकरी है जिसमें तीन चार लिफाफे और अखबारों के रैपर फटे पड़े हैं। उसके सामने लेखक की कुर्सी है और उसके बाईं ओर किताबों से भरी एक रैक दीवाल से लगी रखी है। कुर्सी के ठीक पीछे जँगलेदार दरवाजा है। दो तीन किताबें और पत्र पत्रिकाएँ दरवाजे की चौखट के सहारे पड़ी हैं।

कमरे के दाहनी तरफ एक तख्त पड़ा है जिसपर हरी दरी और सफेद चादर बिछी है। दो-तीन छोटे-छोटे तकिए तख्त पर रखे हैं और एक साफ तौलिया उन पर पड़ी है। हाथ से झले जाने वाले दो पंखे भी तख्त पर हैं।

सामने की दीवार में तीन दरवाजे हैं, बाईं और दाहनी ओर एक-एक है। पीछे की दीवार में दोनों किनारों पर एक-एक बड़ी अलमारी है जिसमें किताबें और फाइलें कुछ तरतीब और कुछ बेतरतीब से लगी हैं। दोनों अलमारियों के बीच शीशेदार शृंगारदान-नुमा दीवालगीरी है जिस पर नकली चाँदी का एक सुंदर डिब्बा रखा है। मेज के दाहनी ओर एक स्टूल पर सुराही है जिस पर शीशे का गिलास रखा है।

समय—

दीवालगीरी के ठीक ऊपर घड़ी लगी है जिसमें ग्यारह बज रहे

हैं। मई का महीना है और रविवार का दिन। काफी गरमी पड़ने लगी है।

हरीश—

पूरा नाम हरिश्चंद्र है। तीस वर्ष का प्रौढ़ युवक। कहानी और कविता के क्षेत्र में प्रसिद्धि पाने लगा है। एम० ए० तक शिक्षा पाई है और इन दोनों बातों का उसे गर्व है। खुलता हुआ रंग; स्वास्थ्य अच्छा; बाल काले, घुँघराले और चिकने हैं। गर्व का तीसरा कारण यही है।

हरीश मेज पर बैठा है। पैजामा और जालीदार बनियाइन पहने है। सामने लाल ब्लाटिंग के पैड पर सफेद कागज है जिसपर पाँच का नंबर पड़ा है। लिखे हुए चार कागज पेपरवेट से दबे एक ओर रखे हैं।]

हरिश्चंद्र

'दया, ममता, प्रीति, अनुभूति, सहृदयता आदि सभी सात्विक गुणों की प्रतिमूर्ति है नारी और' (नेपथ्य से आवाज—बाबूजी!) **प्रतिमूर्ति है नारी और** (पुनः आवाज—बाबूजी! हरीः लिखते-लिखते रुक जाता है।) **जान खाए जाते हैं सब!** (जोर से) **हाँ, आया। थाली परसो।** (फिर पढ़ता हुआ) **सभी सात्विक गुणों की प्रतिमूर्ति है नारी और** (लिखता है) **'जो व्यक्ति उसकी महत्ता भूल कर कोमल, सरल और स्नेहमयी नारी के**

प्रति कठोर हो उठते हैं' (नेपथ्य से —आओ जल्दी, थाली रखी है बड़ी देर से) ऊँह ! कंबख्त ! (जोर से) आया अभी। (धीरे से) कल्ला फाड़े देती है ! (पढ़ता है) स्नेहमयी नारी के प्रति कठोर हो उठते हैं, (लिखता है) 'वे पशु मनुष्य कहलाने·····।

(उषा का प्रवेश)

[उषा—

अवस्था दस वर्ष, भोली-भाली, गोरी और चपल बालिका। बाल घुँघराले, लंबे, चिकने, खुले हुए जो भले लगते हैं। कान में टाक्स लटक रहे हैं। हाथ में चार-चार रँगीन चूड़ियाँ। छपी हुई फिराक और सफेद जाँघिया पहने]

उषा

(झल्लाई हुई आवाज में) थाली रखी है घंटा भर से; माता जी चिल्ला रही हैं। चलिए न !

हरिश्चंद्र

(क्रोध से एक बार उसकी ओर देख कर फिर लिखने लगता है) मनुष्य कहलाने 'योग्य नहीं हैं। ऐसे नर पिशाचों को·····।

उषा

(उसी स्वर में) उठिए जल्दी।

हरिश्चंद्र

(ध्यान न देकर लिखता हुआ) ऐसे नरपिशाचों को

'मानव समाज से तिरस्कृत, बहिष्कृत और निर्वासित करके ही हमें'·····।

उषा

(पिता को अपनी जगह से हिलता हुआ न देख कर) **चलिए जल्दी, बिगड़ रही हैं माता जी।**

हरिश्चंद्र

(कागज की ओर देखता हुआ ही) **जा कह दे, रोटी रख्वदें मेरी।** (पढ़ता है) **मानवसमाज से तिरस्कृत, बहिष्कृत और निर्वासित करके ही हमें** (काटकर फिर लिखता है) **'निर्वासित करने पर ही'** (उषा को खड़े हुए देख कर डाँटता है) **जा भागजा यहाँ से तू।** (आगे लिखता है) **'हमारा गृहस्थ-जीवन'**·····।

(निर्मला का प्रवेश)

[निर्मला—

पच्चीस वर्ष की युवती। रंग गोरा, शरीर इकहरा, चेहरा-मोहरा सुंदर; परंतु मुख पर कांति, उत्साह या प्रफुल्लता का कोई चिह्न नहीं। बाल रूखे हैं, और माँग के सिंदूर की रेखा भी फीकी लग रही है। सादी सफेद धोती पहने है। कान में मामूली टाक्स हैं और नाक में कील। हाथ में चार काली चूड़ियों के बीच में सोने की दो चूड़ियाँ।

निर्मला

(प्रवेश करते ही त्योरियाँ चढ़ा कर) **खाना न हुआ** करतो

वैसी कहा करो। (हरीश हक्का-बक्का-सा उसकी ओर देखने लगता है) तुम्हारा पेट लिखने-पढ़ने से भर जाता है, पर सबके पेट में पट्टी थोड़े बँधी है।

हरिश्चंद्र

(विवाद से बचता हुआ) अभी आया पाँच मिनट में : दो-चार लाइनें ही रह गई हैं बस।

निर्मला

(और झुँझला कर) चूल्हे में गईं तुम्हारी दो-चार लाइनें ! हर वक्त यही रोना है, पाँच मिनट रुक जाओ, दस मिनट में आए, आध घंटे में खायँगे। पूछो, कहाँ तक कोई तपस्या करे चूल्हे के-आगे ?

हरिश्चंद्र

(लेख पर निगाह डालता हुआ) अच्छा भाई, इस समय तो दया करो मुझ पर ; मुझे·····।

निर्मला

(कुछ आगे बढ़ कर) दया गई खेलने; आज इस बात का फैसला हो जाना चाहिए कि मैं कब तक तपा करूँ चूल्हे के आगे। तुम्हें गर्मी लगती है या नहीं ?

हरिश्चंद्र

अब तुम्हीं देर कर रही हो। (कागज हाथ में उठाकर)

जरा देर में पूरा हुआ जाता है यह लेख। दस रुपए की मेहनत है। (मुस्करा कर देखता हुआ) तुम्हारे ही लिए तो·····।

निर्मला

(तिरस्कार के स्वर में जरा सा मुँह फेर कर) मुझे नहीं चाहिए तुम्हारी रोकड़। (फिर सामने देख कर) बोलो, उठना है या नहीं अब ?

हरिश्चंद्र

(दृढ़ स्वर में) मुझे तो पूरा करना है यह लेख अभी। बस, जरा-सा बाकी है। पड़ा रहा तो न जाने कब पूरा हो। तमाम चीजें अधूरी पड़ी हैं।

निर्मला

(तेजी से) तो मैं भी चूल्हे में पानी डाले देती हूँ जाकर। मुझे भी हजारों काम हैं।

हरिश्चंद्र

(झुँझलाहट के स्वर में) पानी डालो चूल्हे में या तुम खुद जाओ चूल्हे में। मुझे परवाह नहीं।

निर्मला

(आवेश में भरी जाती हुई रुक कर) जिस दिन चली-जाऊँगी चूल्हे में, सिर पर हाथ धर कर रोओगे।

[निर्मला का तेजी से प्रस्थान। हरीश एक मिनट तक उसी ओर देखता है। फिर उठ कर शीशे के पास रखे डिब्बे से इलायची और सौफ निकाल कर मुँह में डाल लेता है। जरा आगे बढ़ कर उसी दरवाजे के पास आकर खड़ा होता है जिधर से निर्मला गई है। फिर कुर्सी पर जाकर बैठ जाता है और कलम उठा कर लेख पढ़ने लगता है।]

हरिश्चंद्र

(लेख और कलम मेज पर रख कर) अक्ल की दुश्मन ! सिर खा गई आकर (पुनः लेख पढ़ता हुआ) गृहस्थ जीवन सुखी हो सकेगा। (रुक कर कलम चबाता हुआ कुर्सी से पीठ लगा कर बैठ जाता है) दूसरों का जीवन सुखी बनाने के विधान सोचा करते हैं हम ; परंतु हमारा पारिवारिक जीवन कभी हल न हो सकने वाली जटिल समस्या बन गया है। जब जब·····। (लेख पर फिर झुकता हुआ) ऊँह, हटाओ इन बातों को। (पढ़ता है) गृहस्थ जीवन सुखी हो सकेगा। (लिखता है) 'परंतु इसके लिए' (काटता है) 'अन्यथा यह निश्चित समझिए कि' (फिर काटता है, रुक कर) मूर्ख कहीं की ! कितने मन से लिख रहा था यह लेख ! आकर दिमाग खराब कर गई कंबख्त ! (फिर कलम उठाकर पढ़ता हुआ) गृहस्थ जीवन सुखी हो सकेगा·····।

[नेपथ्य में मारपीट की आवाज जैसे कोई धमाधम पीट रहा हो

किसी को। उषा का जोर से रोना। निर्मला का स्वर—'मर नहीं जाती चुड़ैल कहीं की, पीछा छुटे।'

हरिश्चंद्र

(कलम पटकता हुआ) मूर्ख अब लड़की को मार रही है। (कुर्सी खिसका कर उठता हुआ) तब आज फैसला ही हो जायगा। (क्रोध से खड़ा होकर) पचास दफे कहा मूर्ख से, लड़की को मारा न कर, पर ··· (पुनः बैठ कर) ऊँह, मरने दो सबको। जाऊँगा मैं वहाँ गुस्से में तो कहीं मार बैठूँगा किसी को। (फिर कलम उठा कर लेख पढ़ता हुआ) गृहस्थ जीवन सुखी हो सकेगा !

[सिसकते हुए बालिका का प्रवेश। करुण दृष्टि से एक बार पिता की ओर देख कर स्टूल के पास जाती है। हरीश उसकी ओर दया-दृष्टि से देखता है। बालिका क्षण भर वहाँ खड़ी रहकर तख्त के नीचे से अपना झोला निकालती है जिसमें उसकी किताब और स्लेट है। झोला लेकर वह अंदर जाना चाहती है।]

हरिश्चंद्र

(धीरे से) क्या हुआ री ? क्यों मारा है ?

[बालिका ठिठक जाती है। एक बार पिता की तरफ देख कर सिर नीचा कर लेती है ; उत्तर नहीं देती

हरिश्चंद्र

बोलती क्यों नहीं ? क्यों मारा है ?

[अंदर से निर्मला की आवाज—'चली नहीं अभी ? वहीं मर गई क्या ?' बालिका माता का कर्कश स्वर सुन कर एक बार काँपती और पिता की ओर देखती हुई बिना कुछ कहे फिर अंदर चली जाती है। जाते-जाते पिता की ओर देख कर उषा आँसू पोंछ लेती है।

हरिश्चंद्र

(एक लंबी साँस लेकर) कितने सुखी जीवन की कल्पना की थी और क्या आया सामने ! समझ में नहीं आता करूँ क्या इसे खुश करने के लिए ? दिनरात मेहनत करता हूँ : सिर्फ इसलिए कि पैसा मिले और किसी तरह का अभाव न खटके इसे। फिर भी······।

[नेपथ्य से एक तेज आवाज—हरीश ! ओ हरीश ! हो घर में ?]

हरिश्चंद्र

(जोर से) कौन ? किशोर ! चले आओ। (लेख के बिखरे हुए सफे एकत्र करता हुआ) लाख चाहो कि किसी से मिलो-जुलो मत ; मगर कोई न कोई आ ही जाता है खलने ; अपना और दूसरों का समय नष्ट करने। (लेख में पिन लगाता हुआ) लेख अब क्या पत्थर पूरा होगा ! इसी के पीछे इतनी हाय-हाय हुई !

(किशोर का प्रवेश)

[किशोर—

फैशनेबुल युवक। तंजेब का बढ़िया कुर्ता और महीन किनारे की बढ़िया धोती पहने। कुर्ते के नीचे से जालीदार बनियायन चमक रही है। बटन सोने के हैं; आँखों पर रंगीन चश्मा है। कलाई पर घड़ी और हाथ में बढ़िया हैंडिल की छतरी। प्रवेश करते ही हरीश की ओर ऐसे ढंग से देखता है जैसे उसके घर पधार कर बड़ा एहसान किया हो।

हरीश कुर्सी से उठ कर हँसता हुआ आगे बढ़ता है और किशोर का हाथ पकड़ कर तख्त पर बैठाता है। पंखा उठा कर उस पर झलता हुआ स्वयं दूसरी ओर बैठता है।

हरिश्चंद्र

(मुस्कराता हुआ) बहुत दिन से मिलने की इच्छा थी तुम से। दो-एक बार गया भी तुम्हारी तरफ; लेकिन · · ।

किशोरचंद्र

(बात काट कर व्यंग्य से) जी हाँ। दो-एक नहीं, दस-पाँच बार आप गए होंगे मेरे यहाँ! लेकिन मैं मिला ही न होऊँगा: घर में ताला पड़ा होगा शायद!

[हरीश हँस पड़ता है और अपना हाथ उसके घुटने पर पटक देता है।]

हरिश्चंद्र

(हँसता हुआ) तो क्या झूठ बोलता हूँ मैं ?

किशोरचंद्र

(सिर हिला कर) कभी नहीं ! कौन कह सकता है कि इतने बड़े कवि और लेखक महाशय झूठ बोलेंगे ?

हरिश्चंद्र

(स्वर-परिवर्तन करके) अच्छा न मानो भाई ! तुम्हीं इधर क्यों नहीं आते कभी ?

किशोरचंद्र

मैं ? मैं सोचता हूँ कि क्यों आप के लिखने-पढ़ने में बाधा डालूँ ? (दृष्टि गड़ा कर देखता हुआ) इस समय भी तुम कुछ लिख ही रहे थे और, और ।

हरिश्चंद्र

(कुछ झेंप कर, पर हँसता हुआ) पागल हो बस, तुम्हारे आने से बाधा पड़ेगी मेरे काम में ? (बात बदलता है) अच्छा बताओ क्या हालचाल हैं ? सब चैनचान है ?

किशोरचंद्र

(सोल्लास) खूब ठाठ से कट रही है जिंदगी यार ! दूसरों को जब दुखी और परेशानी का रोना रोते देखता हूँ तो बड़ा ताज्जुब होता है मुझे। समझ में ही नहीं आता कि

आखिर लोग जीवन और संसार से ऊब क्यों जाते हैं ?

हरिश्चंद्र

(मुस्कराता हुआ) मालदार ससुराल और पढ़ी लिखी होशियार पत्नी पा गए हो तभी यह हरियाली सूझ रही है।

किशोरचंद्र

यही जलन तो लोगों को परेशान कर देती है। कवि महाशय ! कल्पनालोक में नहीं, प्रत्यक्ष जगत में विचरिए। (कुछ रुक कर) आप को मालूम है कि ससुराल मिली मालदार जरूर, पर सब कंजड़ निकले और श्रीमतीजी बस चिट्ठी-पत्री लिख-पढ़ लेती हैं। उस पर आप जले मरते हैं।

हरिश्चंद्र

तुम तो यार ! अब तक बड़ी प्रशंसा किया करते थे भाभी की सबके सामने ?

किशोरचंद्र

तो अब बुराई कहाँ कर रहा हूँ ? हाँ, पढ़ी-लिखी वे बस योंही सा हैं। पर मुझे परवाह भी नहीं है उनकी पढ़ाई की। वे मेरी जरूरतें समझती हैं और इतना ही मुझे चाहिए भी।

हरिश्चंद्र

(एकबारगी प्रसन्न होकर जैसे अभीष्ट वस्तु पा गया हो)

सचमुच, यही बात तो होनी चाहिए पत्नी में। मान गया यार तुम्हारी तकदीर को !

किशोरचंद्र

(ज़ोर से हँस कर) पर तुम तो भाग्य-वाग्य मानते नहीं हो ?

हरिश्चंद्र

(सहसा गंभीर होकर) अपने भाग्य पर विश्वास नहीं मेरा ; मैं अपनी शक्ति को बड़ा मानता हूँ। परंतु (कुछ सोचता हुआ उदास स्वर में) सब स्त्रियाँ ऐसी कहाँ होती हैं जो पति की आवश्यकताएँ समझ सकें।

किशोरचंद्र

(ध्यान से उसकी बात सुन कर) पर हो सब सकती यदि····।

हरिश्चंद्र

(अस्वीकारात्मक सर हिलाकर) मैं यह मानने को तैयार नहीं। (मुस्कराता हुआ) ऐसा होजाता तो सभी तुम्हारी तरह अकड़ कर न घूमते !

किशोरचंद्र

(हरीश के मुख पर दृष्टि गड़ा कर) सच बताना, देखो भाभी से कुछ झगड़ा तो नहीं हुआ है तुम्हारा आज ?

हरिश्चंद्र

(मुस्कराने का प्रयत्न करता हुआ) मैं अपनी नहीं, दुनिया की बात कह रहा हूँ।

किशोरचंद्र

देखो, झूठ मत बोलो, मुझ से। तुम लेखक लोग समझते हो कि होशियार बस हमीं हैं, और सब मूर्ख हैं। बाबू! यहाँ बड़े-बड़ों को दिन रात चराया करते हैं चुटकियों में। दुनिया की आँख में धूल झोंकने पर ही यह ठाठ निभता है। बताओ सच, हुई है न कुछ बात आज ?

[किशोर एक बार हँस कर गंभीर हो जाता है। हरीश जरा जोर से हँसता है जिसमें बनावटीपन इतना ज्यादा है कि बात छिपाए नहीं छिपती।]

उषा का इसी समय प्रवेश। हाथ में एक तश्तरी में कुछ मिठाई और नमकीन लिए और दूसरी में पान। तख्त पर दोनों तश्तरियाँ रख, हाथ जोड़ कर सलज्ज 'नमस्ते' करती है। हरीश वात्सल्य से उसकी ओर देखता है। किशोर उषा को पकड़ना चाहता है कि वह भाग जाती है।]

किशोरचंद्र

(तश्तरी बेतकल्लुफी से अपनी ओर खिसका कर) घर से

खाना खाकर चला था; अब प्यास लगी है। धूप से आया हूँ : इसलिए कुछ खाकर पानी पीना चाहता था। मेरे मन की बात जिसने बिना बताए ही समझ ली; (हँसता हुआ) वह आप की जरूरतें न समझे ऐसा मैं मान नहीं सकता। (मिठाई मुँह में डालकर) और उससे असंतुष्ट होने में सरासर आप की गल्ती है।

हरिश्चंद्र

(मुस्करा कर) तो असंतुष्ट है कौन जो आप लेक्चर झाड़े चले जा रहे हैं ? और (जोर से हँसता है) आप अब क्या असंतोष दिखा सकते हैं जब ताजी मिठाई मिल गई है खाने को।

किशोरचंद्र

मुझे तो मिठाई मिली है मेरे भाग्य से और भाभी के·····। (दूसरा टुकड़ा उठाता है) पर तुम मुझसे उड़ो मत, अभी कह चुका हूँ। तुम्हारा प्रश्न क्या संकेत कर रहा है, खुद ही सोच देखो।

हरिश्चंद्र

तुम तो एक बात के पीछे पड़ जाते हो। अच्छा बोलो, आज शाम को घूमने चलोगे ?

किशोरचंद्र

(मिठाई खाता हुआ) घूमने जाते हैं रोगी, बुड्ढे और लेखक ! मैं सिनेमा चल सकता हूँ और सो भी एक शर्त पर। श्रीमती जी साथ जायँगी ही; इसलिए भाभी को भी साथ ले चलो ना। यही तय करने मैं आया भी था। बोलो जल्दी, क्या कहते हो ? धूप चढ़ रही है. मुझे जाना है। पानी तो लाओ।

[हरीश उठकर सुराही से गिलास भरता है और उसे दे देता है। किशोर पानी पीने लगता है। हरीश अपनी जगह बैठकर पंखा हाँकने लगता है। किशोर प्रश्नवाचक मुद्रा से उसकी ओर ताकता हुआ गिलास तख्त के नीचे रख देता है।

हरिश्चंद्र

(मुस्कराता हुआ) अच्छा तो रहेगा, पर वे जाती ही नहीं सिनेमा कभी। कहती हैं—मुझे अच्छा नहीं लगता।

किशोरचंद्र

(खाते खाते रुक कर) क्या ? क्या कहा आपने ?

हरिश्चंद्र

उन्हें अच्छा नहीं लगता सिनेमा।

किशोर चंद्र

(समझौते के ढंग पर) तो नुमाइश ले चलो उन्हें। वहाँ के लिए तो आपत्ति न करेंगी वे ?

हरिश्चंद्र

वहाँ भी न जायँगी। पिछली बार घर भर कह कर हार गया; वे नहीं गईं।

किशोरचंद्र

(तख्त के नीचे से गिलास फिर उठाकर पीता हुआ) तुम गए थे उनके साथ ?

हरिश्चंद्र

(मुस्करा कर अपराधी के से स्वर में) मैं ? मैं तो, तुम जानते ही हो, कहीं नहीं जाता। मैं भला और यह कमरा भला।

(हरीश हँसने का प्रयत्न करता है जैसे कोई सार्थक बात कह गया हो ; किशोर मिठाई वाली तश्तरी और गिलास तख्त के नीचे खिसका देता है। पश्चात, पान उठा कर खा लेता है।

किशोरचंद्र

क्या सचमुच तुम चाहते हो कि भाभी सिनेमा या नुमाइश देखने जाया करें ?

हरिश्चंद्र

(शीघ्रता से) हाँ, चाहता हूँ।

किशोरचंद्र

मेरे साथ भेज दो आज उन्हें। भाभी तुम्हारी जायँगी ही;

बड़ा आनंद रहेगा।

हरिश्चंद्र

(कुछ रुक कर धीमे स्वर में) उनसे कहूँगा: पर मुझे आशा नहीं कि वे जायँगी।

किशोरचंद्र

बड़े होशियार बनते हो तुम ! चाहते भेजना तुम नहीं हो और दोष रखते हो उन पर !

हरिश्चंद्र

(बनावटी रोष से) तुम तो मनमाना अर्थ लगा लेते हो हर बात का !

किशोरचंद्र

(उसकी बात पर ध्यान न देकर उसी स्वर में) भाईजान ! मुझे तो ऐसी स्त्री पर श्रद्धा होती जा रही है। (कुछ रुक कर) कभी यह भी तुमने विचारा कि जिन बातों को तुम नहीं चाहते थे, उन्हीं को तो उसने भी अस्वीकार किया है। जिसमें तुम रस नहीं लेते उसमें उसके लिए आनंद कहाँ ?

हरिश्चंद्र

(किंचित सकोच से धीमे स्वर में) मैं तो ऐसी जगहों से इसलिए दूर भागता हूँ कि स्वास्थ्य मेरा योंही ठीक नहीं रहता और इधर-उधर जाने से और भी गड़बड़ हो जायगा।

किशोरचंद्र

घर में बंद पड़े रहोगे तो स्वास्थ्य बिगड़ेगा नहीं तो क्या बनेगा ? ताज्जुब है कि इसी बुद्धि पर तुम सुंदर कविता और लेख कैसे लिख लेते हो ?

हरिश्चंद्र

(हँसता हुआ कुछ गर्व का अनुभव करके) कविता लिखना क्या कोई कठिन काम है ? सीखना चाहो तो तुम्हें भी सिखा दूँ दो दिन में।

किशोरचंद्र

जी ! बहुत बहुत धन्यवाद ! मुझे नहीं अपने जीवन को नीरस बनाना है !

हरिश्चंद्र

कवियों का जीवन नीरस समझते हैं आप ?

किशोरचंद्र

और नहीं तो क्या ? मैं करूँगा दिनरात कविता और श्रीमती जी रसभरी दो बातों के लिए तरस-तरस कर रह जायँगी; अपने पर और बच्चों पर झुँझलायँगी। आपही को मुबारक रहे यह स्वार्थी व्यवसाय।

हरिश्चंद्र

(सहसा चौंक कर) कहते तो यार ठीक हो।

किशोरचंद्र

(ठठाका मार कर) अब समझे ! बड़ी मोटी समझ है यार तुम्हारी ! अच्छा अब चलने दो। शाम को मैं आऊँगा। तैयार रहना। तुम चाहोगे तो भाभी भी तैयार होजायँगी। मै जानता हूँ।

हरिश्चंद्र

(कुछ अनमना होकर) देखो, कहूँगा मैं।

[दोनों उठ खड़े होते है। किशोर खड़े खड़े डिब्बे में से सुपारी-इलायची निकाल कर खाता है। फिर छतरी सँभाल कर चलने को तैयार होता है। उषा इसी समय तश्तरी में पान लेकर आती है। किशोर एक हाथ से तश्तरी और दूसरे से उषा को पकड़ लेता है।

किशोरचंद्र

(उषा के गाल पर हलकी चपत लगाता हुआ) अब तो पकड़ लिया तुझे) ? (उषा हँस देती है) शाम को सिनेमा चलेगी ? (उषा कोई उत्तर न देकर पिता की ओर देखने लगती है) बोलती क्यों नहीं ? (फिर चपत लगाता है) चलेगी न ?

[हरीश मुस्करा देता है। उषा उसकी ओर देख कर सर नीचा कर लेती है, पर कनखियों से किशोर की ओर भी देखती जाती है। पश्चात, सर हिला कर स्वीकृति देती है।]

किशोरचंद्र

(हरीश का हाथ पकड़ कर) लीजिए जनाब, यह स्वीकृति है भाभी साहिबा की जिन्होंने मुझे विदा करने के लिए पान भेज दिए हैं ठीक समय पर। आइये, जरा बाहर देखिए, कैसी धूप में मैंने कृतार्थ किया है आपको।

[दोनों का हँसते हुए प्रस्थान। उषा तख्त से तीनों तश्तरियाँ उठा कर जाने लगती है। निर्मला का प्रवेश। उसके मुख पर विषाद या रोष का कोई चिह्न नहीं है। मेज पर जाकर वह लेख हाथ में उठा लेती है और सफे पलट कर देखती है। फिर उसे वहीं रखकर तख्त के पास आकर डिब्बा उठाती है और बंद करके शृंगारदान के पास रख देती है। उषा माता के सब कामों को ध्यान से तख्त के पास खड़े खड़े देखती है।

निर्मला

(उषा के पास जाकर पीछे से उसका कंधा पकड़ कर) सिनेमा जाने को कितनी जल्दी तैयार होगई ! (स्नेह से बेटी की ओर देखती हुई) जा गिलास धो ला और सुराही पर रख दे।

[उषा का तश्तरी और गिलास लिए हुए जाना। निर्मला तख्त की चादर झाड़ कर ठीक से बिछा देती है। तकिए पूर्वत् रख देती है। पश्चात, पंखा उठा कर हवा करने लगती है।

हरीश का प्रसन्न मुद्रा में प्रवेश। तख्त और डिब्बे पर निगाह पड़ते ही वह खिल-सा उठता है। निर्मला पति को देखते ही पंखा रख कर जाने लगती है।

हरिश्चंद्र

(सप्रेम उसकी ओर देखकर) कसम है मेरी जो जाय यहाँ से इस समय।

निर्मला

(पीठ फेरे-फेरे ही) मुझे नहीं परवाह है किसी की कसम-असम की।

हरिश्चंद्र

तो जाओ न ! रुक क्यों गई ? (हँसते हुए आगे बढ़कर) किशोर आया था अभी।

निर्मला

(पूर्ववत्) होगा। मुझसे मतलब ?

हरिश्चंद्र

(मुस्करा कर कुछ और आगे बढ़कर) सिनेमा देखने के लिए बुला गया है आपको।

निर्मला

मुझे नहीं जाना है कहीं।

हरिश्चंद्र

मानेगा थोड़ी वह। चलना ही पड़ेगा तुम्हें। मैं भी जाऊँगा आज।

निर्मला

तुम्हीं जाओ। मैं ···मुझे नहीं जान्ता है कहीं।

हरिश्चंद्र

तो मैं फिर कसम धरा दूँगा। (कुछ पास आकर) जरासी बात पर नाराज हो जाती हो। (सप्रेम उसकी ओर देखकर हाथ पकड़ लेता है) चलो, थाली परसो।

(निर्मला पति की ओर देखती नहीं, हाथ भी नहीं छुड़ाती और न कुछ उत्तर ही देती है।)

हरिश्चंद्र

चलो थाली परसो।

निर्मला

(नीचे की ओर ही देखते देखते) लेख पूरा होगया ?

हरिश्चंद्र

(स्निग्ध स्वर में) उसे अधूरा ही रहने दो। (दूसरा हाथ पकड़ता हुआ) अब तो जीतीं तुम ?

निर्मला

(निर्निमेष दृष्टि से उसकी ओर देखती हुई) मैं क्या जीतूँगी

तुममें ? (बहुत धीरे से हाथ छुड़ाती हुई) भूख लगी होगी अब ?

हरिश्चंद्र

अच्छा- यही सही । अब तो चलो ।

निर्मला उसकी ओर देखती हुई जाती है । हरीश उसे जाते-जाते देखता है । निर्मला के चले जाने पर क्षण भर वह उसी जगह पर खड़ा रहता है । पश्चात, मेज के पास आकर लेख उठाता है और उसे एक बार पलट कर फाइल में लगा देता है ।

* संकल्प *

पात्र

विजयचंद्र—हिंदी का अध्यापक

कैलाशनाथ—राष्ट्रीयता का प्रेमी प्रौढ़ [illegible]

रमेशप्रसाद—विजयचंद्र का शिष्य

माधवशरण— ,, ,, ,,

बद्रीसिंह— ,, ,, ,,

[स्थान—

घना बग़ीचा के भीतर एक पक्के मकान का बैठका जिसमें लंबी दहलीज पार करके जाना होता है। बाहरी आदमियों के पहुँचने के लिए परदा करने की जरूरत नहीं होती, पर दहलीज के कारण ऊँचा आवाज आने वाले को अवश्य देनी पड़ती है। बैठके में तीन दरवाजे हैं। कि दहलीज की ओर खुलता है और दूसरा ठीक उसी के सामने हवा के लिए है। ये दोनों नेपथ्य के दो द्वार होंगे; परंतु आने-जाने के लिए सिर्फ एक ही काम में लाया जायगा। तीसरा द्वार घर के अंदर जाने के लिए है। यह सामने परदे पर होगा जिस पर परदा पड़ा रहेगा।

बैठक में साज-सामान कुछ नहीं है। सामने एक तख्त है जिस पर कुछ बिछा नहीं है। उसके एक ओर तीन साधारण कुर्सियाँ पड़ी है। दीवार सफेद पुती है। सामने की तरफ तीन चित्र हैं—एक चरखा कातते गाँधी जी का; दूसरा, उसके बाईं तरफ दृढ़ आकृति में खड़े नेहरू जी का और तीसरा महाकवि तुलसीदास का।

समय—

रविवार का दिन। छुट्टी के कारण सब काम इत्मीनान से होते हैं। एक बज गया है; पर अभी तक भोजन तैयार नहीं है।

विजयचंद्र—

बत्तीस वर्ष का प्रौढ़ युवक। खुलता हुआ रंग, कसरती शरीर। सैंडोकट बनियायन पहने जिससे भुजाओं की मछलियाँ बात करने वाले का ध्यान आकर्षित करती हैं। बंगाली ढंग की धोती बाँधे बाईं तरफ की कुर्सी पर बैठा है। एक पैर तख्त पर है और दूसरा नीचे रखा चप्पल पर। तख्तवाला पैर कभी कभी हिला देता है।

विजयचंद्र एम० ए० पास है। स्थानीय स्कूल में हिंदी का अध्यापक है। कई पुस्तकें लिखी हैं जिनसे वह स्वयं संतुष्ट-सा नहीं है।

कैलाशनाथ—

तीस वर्ष की अवस्था; इकहरा शरीर। धोती, खद्दर का कुर्ता

बुद्धिमान के मस्तिष्क में यह बात नहीं आ सकती।

(विजयचंद्र हँसने लगता है)

कैलाशनाथ

हँस लीजिए आप चाहे जितना; परंतु सत्य यही है। और इसके लिए·····।

विजयचंद्र

भाई मेरे, हमारे युवकों की धन-ऐश्वर्य-लिप्सा उस वातावरण का फल है जिसमें वे पले हैं (स्वर को अधिक संयत करके) उनके माता-पिता और सगे संबंधी धन को ही जीवन का सबकुछ समझते रहे और यही इन्होंने भी सीखा। हम पर, तुम पर, सभी पर ऐसे वातावरण का थोड़ा-बहुत प्रभाव पड़ा है। परंतु आँख खुलती है ठोकर लगने पर ही।

[नेपथ्य से कोई व्यक्ति जोर से आवाज देता है—'मास्टरसाहब' ! दोनों चुप हो जाते हैं]

विजयचंद्र

कौन ? रमेश ! चले आओ यहाँ।

[रमेश प्रवेश करके 'नमस्ते' करता है।

रमेशप्रसाद—

अठारह वर्ष का युवक; भरा हुआ स्वस्थ शरीर। धोती और

आधी बाँह की कमीज पहने। दोनों महीन और बढ़िया कपड़े की हैं जिनसे पता लगता है कि वह धनी का पुत्र है। जेब में फाउंटेनपेन है और हाथ में एक कापी। दसवें दर्जे में पढ़ता है।

मास्टर साहब के संकेत से तख्त पर बैठता है और संकोच से बार-बार कैलाश की ओर देखता है।

विजयचंद्र

कहो, कैसे आए इस समय ?

रमेशप्रसाद

(पुनः कैलाश की ओर देख कर) **मास्टर साहब, यह कविता है मेरी। सुधारकर किसी पत्र में छपवा दीजिए। आपने कहा था।**

' कापी विजय की ओर बढ़ाता है। कैलाश की ओर मुस्कराते हुए एक बार देख कर विजय कापी हाथ में ले लेता है। कैलाश रमेश की ओर देखने लगता है। '

विजयचंद्र

(कापी की ओर ही देखता हुआ) मैंने तो तुमसे कहा था कि शृंगार रस की रचनाएँ मत किया करो।

रमेशप्रसाद

(उल्लास को दबाता हुआ संकोच के स्वर में) **जी, पर मेरी**

बड़ी इच्छा है कि शृंगारी रचनाओं का एक संग्रह यह छप जाय। दाम सब मैं दे दूँगा। आप तय करा दीजिए किसी से। उसके बाद जैसी आज्ञा होगी, वैसा ही करूँगा। इस बार ... दया होगी।

विजयचंद्र

पिता जी से पूछ लिया तुमने ? चार-पाँच सौ का खर्च होगा ?

रमेशप्रसाद

(गर्व से) परवाह मत कीजिए आप। उनसे पूछने की इसके लिए कोई जरूरत नहीं है।

विजयचंद्र

(कैलाश की ओर कापी बढ़ाता हुआ) आप कर सकते हैं इसकी छपाई का कोई प्रबंध ?

विजय एक बार रमेश की ओर देख कर कैलाश की ओर मन में सकुचाता हुआ इस तरह ताकता है जैसे उसके मन की थाह ले रहा हो। कैलाश बेमन से कापी हाथ में ले लेता है और एक बार रमेश पर दृष्टि डालकर कविता देखने लगता है।

रमेशप्रसाद

(उत्सुकतापूर्वक कैलाश से हाथ जोड़ कर) बड़ी कृपा होगी मुझपर आपकी।

कैलाशनाथ

(दृढ़ स्वर में) मैं जानना चाहता हूँ कि आपकी ऐसी रचनाएँ देश की स्थिति से मेल खाती हैं ? इनसे देश का कुछ उपकार होगा ?

रमेश कुछ उत्तर नहीं देता; एक बार मास्टर साहब की ओर देख कर सर नीचा कर लेता है। बाहर से आवाज आती है—'मास्टर साहब' ! विजय रमेश से बाहर जाकर पुकारने वाले को लिवा लाने का संकेत करता है।

रमेश का प्रस्थान

विजयचंद्र

शृंगार रस की ये रचनाएँ किसी उद्देश्य से नहीं लिखी जातीं। अपने साथियों से ये लोग हँसी-मखौल करते हैं। उन्हीं में से किसी को चिढ़ाने, किसी को रिझाने और किसी को बनाने के लिए ये लोग ऐसी कविता लिख मारते हैं।

कैलाशनाथ

ऐसा है, तब तो कवित्व-शक्ति का दुरुपयोग है यह सरासर। भला ऐसे युवक·····।

विजयचंद्र

ऊँह, यह कविता हो तब तो। कोरी तुकबंदी है यह जनाब !

इसे देख कर आप यह न समझें कि ऐसी रचना करने वाले देश के सेवक नहीं हो सकते। इनके दिल में भी आग है; पर है वह राख से ढकी हुई। कुरेदने वाला चाहिए।

रमेश का माधव के साथ प्रवेश।

माधवशरण—

गोरे रंग का अठारहवर्षीय युवक। शरीर इकहरा, हँसमुख मुद्रा, चौड़ा पैजामा, खद्दर का कुरता और जवाहरवेस्ट। दसवें दर्जे का विद्यार्थी है। हाथ में हिंदी का दैनिक पत्र लिए है। दोनों को वह 'नमस्ते' करता है और मास्टर साहब के इशारे से तख्त पर बैठ जाता है।

माधवशरण

मास्टर साहब, अखबार में है कि आज नेहरू जी आ रहे हैं। शाम को उनका व्याख्यान होगा।

कैलाशनाथ

(प्रसन्नता से) **आज! तब तो इस मुर्दा शहर में भी जान आ जायगी। भारत माता का यह वरपुत्र कितनी ओजपूर्ण वक्तृता देता है!** (विजय की ओर देख कर) **किस समय चलिएगा? दो घंटे पहले चलिए, नहीं तो जगह घिर जायगी।** (उत्तर की प्रतीक्षा न करके रमेश से) **आप चलिए मेरे साथ नेहरू जी का व्याख्यान सुनने। लौटने पर यदि आप कहेंगे तो**

आपका संग्रह छपवा दूँगा।

रमेशप्रसाद

(उछलकर) संग्रह छपवा दीजिएगा ! देखिए, आप वादा कर रहे हैं।

कैलाशनाथ

अवश्य छपवा दूँगा। शर्त यह है कि आप मेरे साथ व्याख्यान सुनने चलें।

रमेशप्रसाद

चला चलूँगा आज; पर पिता जी की आज्ञा लेनी पड़ेगी। जाऊँ, पूछ आऊँ उनसे ! अभी आता हूँ।

[रमेश का सोत्साह प्रस्थान। विजय दूसरे द्वार से 'अभी आया मैं' कह कर घर के अंदर जाता है।]

कैलाशनाथ

आपको इस शुभ समाचार के लिए हार्दिक धन्यवाद। नेहरू जी के प्रति बड़ी श्रद्धा है आप में।

माधवशरण

(हाथ जोड़ कर) बंधनों में जकड़े हम युवकों में किसी भी नेता के प्रति क्या श्रद्धा हो सकती है ! उनकी बातें भर हम सुन आते हैं और फिर, वही रोज का चर्खा ! (कुछ रुक कर) इतना

जोश भी मास्टर साहब की देन समझिए।

कैलाशनाथ

गनीमत हैं ये मास्टर साहब तुम्हारे। नहीं तो आजकल अध्यापकों से बढ़कर स्वार्थी तो शायद ही कोई होगा। 'ट्युशन' हो अच्छी; पैसा मिले, फिर चाहे पेपर आउट करवा लीजिए उनसे, चाहे नंबर बढ़वा लीजिए। फेल करने का हौआ दिखा-दिखा कर मजबूर करते हैं लड़कों को 'ट्युटर' रखने के लिए ये लोग।

विजयचंद्र

(प्रवेश करके हँसता हुआ) हम लोगों की कठिनाइयाँ भी मालूम हैं आप को ?

कैलाशनाथ

(दृढ़ता के साथ) भाई देखो, बुरा मानने की बात नहीं है। भारतीय चरित्र को गिराने वाले हमारे अध्यापक ही हैं और यह इसलिए कि स्वयं उनका कोई चरित्र नहीं, उनमें कोई उत्साह नहीं।

विजयचंद्र

(तटस्थ भाव से) ठीक हो सकती है तुम्हारी बात; परंतु देश के युवकों पर अध्यापक से अधिक प्रभाव पड़ता है माता-पिता का।

कैलाशनाथ

मैं इसे मानने को तैयार नहीं। अध्यापक बालकों की रुचि का परिष्कार करते हैं और यदि वे स्वयं ढंग के हों तो विद्यार्थियों पर उनका प्रभाव स्थायी होगा। अभी आप के ये शिष्य ही (माधव की ओर संकेत करता है) आपकी प्रशंसा कर रहे थे कि देश के प्रति इनका प्रेम आपकी ही देन है।

(माधव सर झुका लेता है)

विजयचंद्र

(माधव की पीठ पर हलका घूँसा जमाकर) पागल है यह। पूछो, इसके दर्जे में पचीस लड़के हैं। मेरी बात का असर सिर्फ इसी पर क्यों पड़ा ? दूसरे क्यों अपने रंगों में रँग रहे हैं ? स्वाती की बूँद सीपी में पड़ कर ही मोती होती है।

माधवशरण

(विजय से) तो आप चलिएगा आज ? आप तो आते-जाते नहीं हैं कभी !

विजयचंद्र

मैं ? (गंभीर होकर) मैं नहीं जाऊँगा। तुम चले जाना अपने साथियों के साथ। इधर से होकर जाओ तो ये भी (कैलाश की ओर संकेत करता है) चले जायँगे तुम्हारे साथ। कल

व्याख्यान के संबंध में बातें होंगी। नेहरू जी की बातों पर मनन करना तुम।

[कैलाश माधव के हाथ से अखबार लेकर देखने लगता है। माधव की दृष्टि भी उसी ओर जमी है।]

विजयचंद्र

(कैलाश को रोक कर) चलो, भोजन कर लो पहले। एक बज चुका है।

कैलाशनाथ

(माधव की ओर पत्र बढ़ाता हुआ) हाँ, चलो। भूख भी लगी है मुझे। (मुस्कराता हुआ जवाहरवेस्ट खोल कर कील पर टाँग कर) क्या कपड़े उतारने पड़ेंगे ? मैं तो भाई इन बातों को मानता नहीं।

विजयचंद्र

यह अपनी-अपनी रुचि है। इसमें झगड़ा किस बात का ! सफाई रहना चाहिए।

माधवशरण

(उठ कर खड़ा होता हुआ) तो चलूँ मैं ! तैयार होकर आजाऊँगा थोड़ी देर में।

['अच्छी बात है' कह कर कैलाश विजय के साथ चलने को

तैयार होता है। इसी समय रमेश का बद्री के साथ प्रवेश। कैलाश और विजय उठ कर जाते हैं।

बद्रीसिंह—

अठारह वर्ष का साँवला युवक। सिल्क का बढ़िया कुरता पहने है, सोने के बटन हैं। पैर की चप्पल भी नई है। चेचक के कुछ दाग मुँह पर हैं; परंतु स्वास्थ्य अच्छा होने के कारण चेहरे पर कांति है। सोने की कमानी का चश्मा लगाए है। वह हाथ जोड़ कर मास्टर-साहब से 'नमस्ते' करता है, कैलाश की तरफ ध्यान भी नहीं देता। सभी खड़े रहते हैं।

कैलाशनाथ

(रमेश से) कहिए, क्या आज्ञा है आप के पिता जी की? चलेंगे आप?

रमेशप्रसाद

जी हाँ, मैं चलूँगा आपके साथ। आप संग्रह छपादें मेरा।

विजयचंद्र

अच्छी बात है। (बद्री से मुस्करा कर) कहिए, कोई नया तमाशा आया है आज?

[बद्री कुछ शर्मा कर सर नीचा कर लेता है; कैलाश की दृष्टि उसपर पड़ती है कुछ कड़ी होकर। रमेश और माधव मुस्कराने लगते

हैं बद्री की ओर देख कर।]

विजयचंद्र

(रमेश और बद्री से साथ-साथ)

भोजन कर आए ? (दोनों स्वीकृति-सूचक सर हिलाते हैं।) हम भी भोजन करलें: तब तक बैठो तुम लोग।

[कैलाश के साथ विजय का प्रस्थान। रमेश और बद्री तख्त पर बैठते हैं।

माधवशरण

(खड़े खड़े) तुम भी चलोगे आज, यह बड़ा अच्छा रहेगा ! अखबार रखो तुम। मैं आया अभी।

[माधव का प्रस्थान। रमेश और बद्री आराम से दीवाल का सहारा लेकर तख्त पर बैठते हैं।]

रमेशप्रसाद

(उल्लासपूर्वक) कविता का संग्रह छपने दो मेरा। तुम्हीं को समर्पण करूँगा। तुम्हारा और अपना, दोनों का फोटो छपवाऊँगा। कितना आनंद रहेगा !

बद्रीसिंह

देखो, मैं फिर कहता हूँ कि झूठ मत बोलो। मास्टरसाहब से बात छिप सकेगी नहीं और उन्हें पता लग गया तो समझ रखना बस।

रमेशप्रसाद

(लापरवाही से) ऊँह, चुप हो जायँगे कुछ देर बकझक कर अपने आप। पिता जी से कह दूँगा, गया था शाम को जरूरी काम से एक मित्र के यहाँ।

बद्रीसिंह

मुझे ये बातें पसंद ही नहीं; मेरी राय में तो चलो तुम सिनेमा टाट से। व्याख्यान तो ऐसे रोज ही हुआ करते हैं। और इनको काम ·····।

रमेशप्रसाद

(समर्थन करता हुआ) है तो सचमुच यही बात। पता नहीं, इन नेताओं को·····

[कुछ आहट पाकर चुप हो जाता है और दोनों अंदर की ओर देखने लगते हैं। किसी को आता न देख कर बद्री हँस पड़ता है खिलखिलाकर।]

बद्रीसिंह

(हँसी रोक कर) चोर का दिल ही कितना, लाला जी। इसीसे कहता हूँ कि जो बात हो, खुल कर करो। मुझे इन व्याख्यानों से चिढ़ है। इसी से जाता नहीं कभी सुनने। जाऊँगा, भी तो कुछ असर नहीं पड़ सकता मुझ पर इन सब बातों का।

रमेशप्रसाद

चिकने घड़े जो ठहरे आप। क्या असर हो सकता है ऐसों पर ?

बद्रीसिंह

तुम रहे बस वही। मैं जानता हूँ कि ऐसे व्याख्यानों से लाभ नहीं होगा कुछ। इसलिए मेरी बात मानो, चले तो चलो इनके साथ; पर दस मिनट बाद खिसक चलेंगे वहाँ से और देखेंगे सिनेमा। बोलो, हो तैयार ?

रमेशप्रसाद

यार, जी तो मेरा भी यही चाहता है; पर आज रहने दो। उन्होंने संग्रह छपवाने का वादा किया है सिर्फ इस शर्त पर कि मैं उनके साथ व्याख्यान सुनने चला चलूँ। (कुछ रुक कर) पर इससे उनका उद्देश्य क्या है ?

बद्रीसिंह

शायद उन्होंने सोचा होगा कि नेहरू जी का व्याख्यान सुन कर तुम्हारे विचार कुछ बदल जायँ।

रमेशप्रसाद

तब तो अवश्य जाऊँगा व्याख्यान सुनने। देखूँ, नेहरू जी के व्याख्यान में कितनी शक्ति है !

बद्रीसिंह

अच्छा, बतला सकते हो कि मास्टर साहब क्यों नहीं जाते व्याख्यान सुनने ?

रमेशप्रसाद

मैंने उनसे कभी चर्चा नहीं की इस संबंध में। (हँसकर) वे भी समझते होंगे तुम्हारी तरह कि ये सब बेकार की बातें हैं. कुछ होने-हवाने का नहीं इनसे।

(माधव का प्रवेश। इस बार वह रेशमी सूट पहने है। जेब में रूमाल है, कलम है, और कलाई पर घड़ी। हाथ में एक नोटबुक भी है)

बद्रीसिंह

इन्हें मालूम होगी यह बात। क्यों माधव ? बतला सकते हो कि मास्टर साहब किसी नेता का व्याख्यान सुनने क्यों नहीं जाते ?

माधवशरण

(गंभीर होकर) निश्चित रूप से तो कुछ कह नहीं सकता: पर मेरा अनुमान यह है कि ऐसे व्याख्यानों का उद्देश्य जिन भावों को जगाना है वे योंही उनके मस्तिष्क को सदा अशांत किए रहते हैं।

बद्रीसिंह

कुछ जँची नहीं यह बात। पहनते बराबर ठाट से सूट बूट हैं·····।

[सहसा कुछ आहट सुन कर चुप हो जाता है। तीनों भीत की ओर देखने लगते हैं।]

बद्रीसिंह

(पुनः धीमे स्वर में) आते होंगे मास्टर साहब। हटाओ इन बातों को।

माधवशरण

(निर्भीकता से) तो इसमें डरने की क्या बात है? मैं पूँछूँगा आते ही उनसे इसका कारण।

बद्रीसिंह

मेरा नाम मत ले देना कहीं। अखबार देखा है तुमने? है कोई खास बात?

माधवशरण

यही दिखाने तो लाया था। नेहरू जी के एक व्याख्यान ने लड़कियों में कितनी जागृति पैदा करदी है, जरा पढ़ो तो इसे।

[पढ़ने की जगह बता कर अखबार बद्री की ओर बढ़ा देत

है। रमेश भी उठकर उसके पास आजाता है और मन ही मन पढ़ने लगता है।

बद्रीसिंह

(पढ़ता हुआ) आश्चर्य है यार! शृंगार की सभी विदेशी चीजों को त्यागने का शपथपूर्वक निश्चय! क्या निभ सकेगा यह इनसे?

माधवशरण

(हँसता हुआ) निभेगा नहीं तो क्या कोरा आवेश समझते हो तुम इसे? (सर हिला कर) भाईजान! सुख-सेज पर पड़े-पड़े यदि किसी देश ने स्वतंत्रता पा ली होती तो पृथ्वी को रक्त से बार बार सींचने की आवश्यकता किसी जाति को कभी न होती।

बद्रीदास

गजब कर दिया इन लड़कियों ने!

माधवशरण

यही तो कहता हूँ कि जिस देश की सुकुमार कन्याएँ इतना त्याग कर रही हों, उस देश के हम युवक यदि उनसे पीछे रहें, उनके इस आदर्श से भी शिक्षा न लें तो हमारे लिए बस·····।

रमेशप्रसाद

(बद्री की ओर संकेत करके मुस्कराता हुआ माधव से) परंतु आप को शायद मालूम नहीं कि हमसे से बहुत लड़के ऐसे भी हैं जिनको इस बात का दावा है कि नेहरू जी के व्याख्यान का जरा भी असर हम पर नहीं पड़ सकता। ये लोग अपने को·····।

बद्रीसिंह

मुझ पर व्यंग्य कर रहे हो ? तुमने मुझे सिर्फ सिनेमा का शौकीन भर समझा है ?

रमेशप्रसाद

मैंने तो सिर्फ तुम्हारी बात दोहराई है।

बद्रीसिंह

(शांत स्वर में) वही तो कह रहा हूँ। मैं सप्ताह में चार पाँच शो जरूर देखता हूँ; पर आज से मेरा निश्चय है कि सिनेमा देखना बिलकुल बंद कर दूँगा। माधव ! तुम साक्षी रहना ! (गंभीर भाव से हँसता हुआ) देश के स्वतंत्र होने पर अब हम तुम सब साथ सिनेमा देखने चलेंगे।

[रमेश और माधव सहसा सकपका जाते हैं। बद्री उनकी ओर देखकर जोर से हँस पड़ता है। माधव क्षण भर बाद जैसे सावधान होकर, बद्री का हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर झकझोर

देता है।]

माधवशरण

(गद्गद् कंठ से) तुम्हारे इस निश्चय के लिए मेरी हार्दिक बधाई। ईश्वर शक्ति दे कि तुम इस निश्चय पर दृढ़ रह सको। (रमेश से उसका हाथ पकड़ कर) तुम गंभीर क्यों हो गए? इनके हृदय में इस सद्विचार के उदय होने का कारण तुम ही हो। तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए।

[रमेश कोई उत्तर नहीं देता। एक बार बद्री की ओर देखकर सर नीचा कर लेता है। विजय का कैलाश के साथ प्रवेश। मास्टर साहब के हाथ में एक तश्तरी में सौंफ और इलायचियाँ हैं। सब खड़े हो जाते हैं।]

विजयचंद्र

(मुस्करा कर कैलाश की ओर संकेत करता हुआ) इन्होंने तो पान खाए हैं; पर मैं अपने हाथ से तुम लोगों को पान देना उचित नहीं समझता (सब मुस्कराने लगते हैं) इस लिए यह ले लो।

बारी-बारी सबकी ओर तश्तरी बढ़ाई जाती। तीनों युवक सौंफ-इलायची लेकर हाथ जोड़ते हैं।]

कैलाशनाथ

(आराम से अपनी कुर्सी पर बैठता हुआ) कहिए क्या

सलाह हो रही है ?

माधवशरण

(हर्षावेश में) बड़े हर्ष की बात है साहब। हम लोग देश की जागृति को लेकर बात कर रहे थे। कुछ ऐसा प्रसंग आ गया कि इन्होंने आज से उस समय तक सिनेमा न देखने का प्रण कर लिया है जबतक भारत स्वतंत्र न होजाय। (बद्री की ओर देखता है)

कैलाशनाथ

(बद्री की पीठ थपथपा कर) यह तो बड़े गर्व का विषय है। दूसरे युवकों को भी इससे शिक्षा लेनी चाहिए।

[बद्री एक बार ससंकोच अध्यापक, कैलाश और रमेश की ओर देख कर दृष्टि नीची कर लेता है। रमेश का सर भी झुका हुआ है। कभी कभी वह बद्री की ओर देख लेता है।]

विजयचंद्र

(बद्री के पास आकर उसका हाथ अपने हाथ में लेकर) जानते हो तुम कभी राष्ट्रीय व्याख्यान सुनने किसी सभा में क्यों नहीं [illegible] ?

बद्रीसिंह

([illegible] की ओर देख कर धीरे से) जी, आज हम लोग

आप से यह पूछने ही वाले थे।

विजयचंद्र

मैं स्वयं ही तुम्हें बतलाए देता हूँ। (धीमे स्वर में) मैं जानता हूँ कि इन व्याख्यानदाताओं को क्या कहना है। शब्द और कहने का ढंग सबका अलग-अलग है, संदेश सबका सीधा सादा यही है कि बहुत सो चुके, अब जागो और देश के प्रति अपना कर्तव्य पालन करो। (कैलाश से) क्यों साहब, है न ठीक यह ?

कैलाशनाथ

(ध्यान से उसकी ओर देखता हुआ) हाँ, सार सबके व्याख्यानों का यही है।

विजयचंद्र

(पूर्ववत् संयत स्वर में) संदेश तो मैंने पालिया है; परंतु अभी तक यह निश्चय नही कर पाया कि अनेक विवशताओं से जकड़े रहने पर मैं किस प्रकार अपना कर्तव्य निभा सकूँगा (कुछ रुककर) यह मेरी दुर्बलता है और मै इससे परिचित हूँ !

कैलाशनाथ

परंतु कठिनाइयाँ और विवशताएँ तो सबके साथ हैं। सब यही सोंचने लगते तो इतने स्वदेशभक्त कैसे सामने आते ?

विजयचंद्र

(समझौते के स्वर में) ठीक है; पर इन नेताओं की आवाज देश के पीड़ितों की नहीं, उनके हिमायतियों की है। (स्वर परिवर्तन करके) जिन·····।

कैलाशनाथ

(माधव की ओर देखकर) इन हिमायतियों में अनेक पीड़ित भी हैं।

विजयचंद्र

पर कितने ? और फिर जिन दुखों और कष्टों की चर्चा करके ये लोग देश में जागृति फैलाने चाहते हैं, वे इन्होंने कभी भोगे नहीं, सहे नहीं; केवल सुने हैं (कुछ क्षण रुक कर) शायद एकाध बार देखे भी हों। इस कारण जोरदार होते हुए भी इनकी आवाज अभी तक बहुत ज्यादा प्रभावशालिनी नहीं हो सकी।

माधवशरण

(किंचित संकोच से सविनय) जागृति तो देश में काफी है; जहाँ हमारे नेता जाते हैं, कितने उत्साह और ठाट-बाट से स्वागत होता है इनका !

विजयचंद

देश के एक प्रतिशत लोग भी तो नहीं जागे हैं ! (माधव

कुछ उत्तर नहीं देता) और इसका कारण यह है कि अभी पीड़ितों ने सर नहीं उठाया है। उन्होंने कष्ट सहना भर सीखा है, उसका विरोध करना नहीं।

कैलाशनाथ

उनके शोषण की रीति ही ऐसी अप्रत्यक्ष है कि वे वास्तविक शोषक को जान ही नहीं पाते।

विजयचंद

यही तो कहना हूँ कि जिस दिन वे लोग दासता के बंधन से मुक्ति पाना चाहेंगे, सारा देश अनायास स्वतंत्र हो जायगा; निश्चित समझिए।

[विजयचंद का स्वर क्रमशः ओजमय हो जाता है; सब उनकी ओर एक टक निहारने लगते हैं।]

विजयचंद

(पुनः शांत स्वर में) मैं चाहता हूँ कि कोई व्याख्यान सुनने के पहले मैं देश के पीड़ितों और भुक्तभोगियों की श्रेणी में पहुँच जाऊँ। (स्वर-परिवर्तन) यों, पीड़ित तो हम सभी हैं; पर हमारी पीड़ा प्रायः झूठी है और वह हमारे मर्मस्थल की 'आह' निकालने में समर्थ नहीं।

कैलाशनाथ

(माधव की ओर देख कर) कष्ट मोल लेने जाने की भी

जरूरत है क्या ?

विजयचंद्र

कष्ट तो आ सकते हैं; परंतु वह अद्‌भुत सहनशीलता कैसे आएगी जो पाप का घड़ा भरने की आशा में हँसते-हँसते सब कुछ सहने की क्षमता प्रदान करती है।

कैलाशनाथ

(लंबी साँस लेकर) हमारे भाग्यवाद ने सिर्फ कष्ट सहना ही तो सिखलाया है हमें।

विजयचंद्र

(उसके व्यंग्य की ओर ध्यान न देकर पूर्ववत स्वर में) पर अभी मैं दुर्बल हूँ; कष्ट सह नहीं पाता। इसीलिए पीछे हूँ; कहीं आने-जाने की इच्छा नहीं होती। (स्वर-परिवर्तन) मेरी समझ में देश के युवकों में इस प्रकार की सहनशीलता का बीज बोने के लिए सबसे सुंदर उपाय वैसा ही निश्चय है जैसा अभी बद्री ने किया है।

[सभी की दृष्टि एक साथ बद्री पर पड़ती है। बद्री एक बार अचकचा कर विजय के हाथ जोड़ देता है। कैलाश रमेश की ओर ऐसी दृष्टि से देखता है जिससे अवहेलना प्रकट होती है। रमेश की आँखें नीची हो जाती हैं।]

बद्रीसिंह

(विजय से नम्रतापूर्वक) आप तो जरा-सी बात को न जाने कहाँ की कहाँ लिए जाते हैं।

विजयचंद्र

(स्नेहपूर्वक उसकी ओर देखकर) बद्री, यह बात नहीं है। सिनेमा-जैसे मनोरंजन के सर्व-सुलभ साधन से वंचित रहने पर दासता का काँटा प्रतिदिन चुभकर तुम्हारे मर्मस्थल को पीड़ित करता रहेगा और तब एक दिन तुम अपने को स्वतः पीड़ितों की श्रेणी में खड़ा पाओगे।

[बद्री पुनः हाथ जोड़ता है। कैलाशनाथ व्यंग्य-दृष्टि से रमेश की ओर देखते हैं। माधव अत्यंत गंभीर होकर दीवार पर लगे चित्रों की ओर देखने लगता है।]

विजयचंद्र

इसी प्रकार के संकल्प करके और उन्हें निभाकर ही देश के प्रति ऋण से हमारे नवयुवक उऋण हो सकेंगे।

माधवशरण

मास्टर साहब, आज मैंने सूट-बूट को तिलांजलि दी; देशी वेश-भूषा और रहन-सहन ही मैं अपनाऊँगा।

[सब अचकचा कर माधव की ओर देखने लगते हैं। 'शाबाश'

कैलाश के मुँह से स्वतः निकल जाता है। माधव सर झुका लेता है।]

बिजयचंद्र

(कैलाश की ओर देख कर) तुम इसे कोरा आवेश तो नहीं समझते इन युवकों का ?

कैलाशनाथ

(गंभीर स्वर में) मैं जानता हूँ कि महान संकल्पों का जन्म आवेश में ही होता है। पर सारा युवक समाज ऐसे संकल्प कर सकेगा ?

विजयचंद्र

न कर सकने पर भी इनके पीछे तो चल ही सकता है। आवेश की ओजमयी शक्ति एक दिन उन निर्जीवों को भी सजीव कर देगी, यह निश्चित है।

रमेशप्रसाद

(शृंगारी कविताओं की कापी फाड़ता हुआ कैलाश की ओर देख कर) अब इसे छपवाने की आवश्यकता नहीं है।

कैलाशनाथ

अरे, यह क्या किया तुमने ?

रमेशप्रसाद

(खड़ा होता हुआ) चलिए व्याख्यान सुनने। देर

होगई तो जगह न मिलेगी।

कैलाशनाथ

(खूँटी से कपड़े उतारता हुआ विजय से) **भाई, आज तो तुम्हें भी चलना चाहिए।**

विजयचंद्र

(गर्व से एक बार तीनों शिष्यों की ओर देख कर आँखों में हर्ष के आँसू भरे) **चलूँगा।**

* *
*

गांधार-पतन

पात्र

आंभी—गांधारनरेश

वीरभद्र—गांधारकुमार

गुप्तसेन—गांधारसेनापति

धर्मशील—गांधार का महामात्य

मर्नंद [illegible] का स्नातक

महाप्रतिहार

यवनदूत

वसंतसेना—गांधार की महारानी

[स्थान—

तक्षशिला के विशाल राजभवन का गुप्त-परिदृश्यगृह। पंद्रह फीट लंबा-चौड़ा कमरा। दीवारों पर नयनाभिराम चित्रकारी। फर्श पर कालीन बिछे हैं। सामने हाथीदाँत का सुंदर सिंहासन है जिसके पाये, हत्थे और पीठिका स्वर्णमंडित हैं। उसके स्वर्ण-छत्र के आतपत्र में अनेक रत्न जड़े हैं। एक ओर की दीवार पर कुछ आयुध टँगे हैं।

सिंहासन की दाहनी और बाईं ओर एक एक स्वर्ण पीठिका हत्थेदार है और तीन-तीन पीठिकाएँ केवल हाथीदाँत की हैं। ये सब अर्द्धचंद्राकार रूप में रखी हैं।

समय—

सिकंदर के आक्रमण का समय। उसने अभी भारत में प्रवेश नहीं किया है।

वर्षाकाल के प्रथम मेघ आकाश में उमड़ रहे हैं। ग्रीष्म की तप्त वायु आज शीतल होकर बह रही है। सायंकाल के पाँच बजे हैं।

गांधारकुमार—

सिंहासन के दाहनी ओर की स्वर्णपीठिका पर बैठा है। पचीस वर्ष की अवस्था; गोरा रंग, लंबा स्वस्थ शरीर, चौड़े मस्तक पर

स्वर्णमुकुट शोभित है। कटि से कसी तलवार लटक रही है। नेत्र बड़े-बड़े और तेजयुक्त हैं। मुख पर ब्रह्मचर्य की कांति विशेष आकर्षक है। गोरे मुख पर मूछों की नई रेखा खूब खिलती है।

सेनापति—

पैंतीस वर्ष की अवस्था का प्रौढ़ व्यक्ति। साँवला रंग, गठा हुआ शरीर; मोटी नाक के नीचे ऊपर को उठी हुई काली मोटी मूछें। तलवार के अतिरिक्त एक शस्त्र और बाँधे।]

वीरभद्र

(गंभीर निश्चयात्मक स्वर में)

महाराज पधारेंगे किस समय, कहो ?

गुप्तसेन

एक घड़ी में कुमार ! आवेंगे वे यहाँ।
स्वयं निश्चय नहीं कर पा रहे हैं करें
क्या इस समय वे।

वीरभद्र

(स्वर को नम्र करके)

निश्चय करने वाले
तो हम लोग हैं सेनापते ! महाराज क्यों
चिंतित हैं ?

गुप्तसेन

ठीक है, परंतु·····

वीरभद्र

परंतु क्या ? क्या
यह उचित है कि उत्कोच यवनों का
स्वीकार कर मार्ग दिया जाय उन्हें· कहो ?
द्वार चिर स्वतंत्र भारतभूमि का खोलें
हम कृतघ्न, नीच देशद्रोही कहाने को ?

(कुल और उत्तेजित होकर)

ऐश्वर्य के कुत्सित लोभ से लगालें
इतना बड़ा टीका कलंक का माथ अपने ?

[गांधारकुमार आवेश में आजाता है। परन्तु सेनापति की गंभीर दृष्टि पूर्ववत् ही है, जैसे उस पर कुमार की उत्तेजना का कोई प्रभाव ही न पड़ा हो। राजकुमार उसकी ओर ऐसे देखता है जैसे उत्तर की प्रतीक्षा उसे असहनीय हो।]

गुप्तसेन

विवश हैं महाराज।

वीरभद्र

विवश ! सेनापते !
कैसी करते बात ? आपत्तियों का सामना

करने की दृढ़ता अपनी अग्नि प्रचंड में
तूल-सा जला उड़ा देती है विवशता की
दुर्बलता को पल मात्र ही में ?

गुप्तसेन

यथार्थ है ;
परंतु यवनों की विजयोन्माद के गर्व में
चूर सेना को कैसे रोक हम सकेंगे ?

वीरभद्र

शंका कैसी सेनापते ? अपने राज्य के
पूर्वीय और पश्चिमीय सभी प्रांतों को
दलित करके बढ़ाई जो शक्ति हमने
है अपनी, किस दिन काम वह आयगी ?

गुप्तसेन

स्थिति आज है विषम; गृहकलह ने
शक्ति को पंचनदप्रदेश समस्त की
क्षीण कर दिया है और छिन्न,भिन्न भी।

वीरभद्र

परवाह क्या सेनापति ! खड़े होना हमें
अपने पैरों पर ; युद्ध करना है शक्ति से
अपनी; शत्रु कोई हो लोहा लेना सभी से।

गुप्तसेन

क्षमा हो कुमार ! धृष्टता मेरी यदि कहूँ
मैं नम्र स्वर में—असमर्थ हम युद्ध के
लिए हैं इस समय ।

वीरभद्र

वीर कहते हो
अपने को तुम ? गर्व गांधार नरेश को
है तुम्हीं पर ? आश्चर्य महान मुझे !

[आवेश से पैर पटक कर कुमार खड़ा हो जाता है । सेनापति भी खड़ा होकर अपना सर झुका लेता है ।

इसी समय महाराज का प्रवेश । दोनों सर झुका कर अभिवादन करते हैं ।

गांधार नरेश—

लगभग पचास वर्ष की अवस्था । गोरे, लंबे, विशालकाय पुरुष मुखमंडल रोबदार । आकृति से दृढ़ता टपकती है । दाढ़ी के बाल कुछ-कुछ सफेद हैं । कोई अस्त्र-शस्त्र साथ नहीं है ।

महाराज सिंहासन पर बैठते हैं और उसके संकेत पर कुमार और सेनापति अपने-अपने आसनों पर ।]

आंभी

(कुमार की ओर देखकर)

जानते हो बुलाया है क्यों इस समय मैंने

तुम्हें एकांत गुप्त-परिषद्‌गृह में ?

वीरभद्र

संभवतः यवन-सेना का मार्ग रोकने
को सन्नद्ध होने का आदेश देने के लिए।

आंभी

वीर हो तुम कुमार ! योग्य कथन यही
है तुम्हारे, और संतुष्ट भी हूँ मैं इसी से।
परंतु युद्ध का विचार नहीं है हमारा।

कुमार

कारण क्या है पिता जी इस अनिच्छा का ?

आंभी

यवनों की गतिविधि पर दृष्टि है मेरी
बहुत पहले से ; शक्ति और सेना का
उनकी परिचय मुझे है पूरा। इसी से
स्वीकार कर लिया है मैंने प्रस्ताव को
सिकंदर के ; मार्ग दूँगा मैं अपने
राज्य से सेना ले जाने का, विवशता से ही।

वीरभद्र

विवशता गांधार की रुद्र यह पिता जी !

कायरता की परिचायिका नहीं समझी
जायगी क्या दूसरों की दृष्टि में ? भारत का
सिंहद्वार लुटेरों के लिए खोल देना यों,
देशद्रोह नहीं कहलायगा क्या ?

(कुमार का स्वर ओजमय हो जाता है)

आंभी

यही तो
कलंक मैं चाहता हूँ मिटाना। सोचा मैंने
है उपाय एक। मानोगे ?

[महाराज एक बार सेनापति की ओर मर्मभरी दृष्टि से देखकर कुमार की ओर इस तरह देखते हैं जैसे उसके हृदय की थाह लेने का प्रयत्न कर रहे हों।]

वीरभद्र

देश और जाति की
मान-रक्षा के लिए दे प्राण सकता हूँ
हँसते हँसते संकेत मात्र पर आप के।
आज्ञा पिता जी कीजिए !

आंभी

अपने सेनापति को
साथ ले गांधार की सीमा के बाहर जाओ

तुम इसी क्षण।

वीरभद्र

उद्देश्य इस निर्वासन का
जान सकता हूँ ?

आंभी

मोह में ऐश्वर्य के औ'
प्रपंच में माया के फँस चुका हूँ इतना
मैं कि कल्याण हो नहीं सकता देश का
मुझसे किसी प्रकार ; संपादन करो उसे
तुम मेरे लिए।

(आशय न समझ कर)

निर्वासन मात्र से मेरे
संपादन हो सकेगा कार्य यह कैसे ?

आंभी

पिता के पाप का फल भोगने को प्रस्तुत हो
कुमार तुम ? सिकंदर को अपने राज्य से
मार्ग देने का वचन देकर किया मैंने
जो पाप है, प्रायश्चित उसका तुम करो।

वीरभद्र

सहर्ष प्रस्तुत हूँ मैं पिता जी ! समझूँगा

परम सौभाग्य इस निर्वासन को अपने,
शुभाशीर्वाद से आप के आहुति प्राणों की
देने का स्वर्णावसर पा सका यदि यज्ञ में
स्वतंत्रता के।

आंभी

(गद्‌गद् होकर)

प्रसन्न हुआ मैं : संतुष्ट हुआ। जाओ तुम अभी।

(उठकर माथा चूम कर)

जाओ गांधार की सीमा के बाहर : करो
प्रचार मेरे बिरुद्ध खूब।

(कुमार चलने को प्रस्तुत होता है)

कायर नहीं मैं,
देशद्रोही भी नहीं। सिकंदर विदेशी को
विवश होकर दिए हैं वचन जो मैंने
कलेजे पर पत्थर रख निभा रहा हूँ।
स्थिति की जटिलता भयानक है कितनी !

(कुमार चलने को प्रस्तुत होता है)

आवेश में न करना घृणा मुझसे, जाओ।

(सेनापति की ओर देखकर)

कुमार की रक्षा का भार तुम पर रहा।

वीरभद्र

निवेदन एक है पिता जी !

आंभी

क्या चाहते हो ?

वीरभद्र

जाने दीजिए अकेले मुझे ; सेनापति की
आवश्यकता है स्वदेश को। सिकंदर के
आने पर यहाँ दृष्टि रखनी होगी इन्हें
उसकी हरेक चाल पर। प्रार्थना यही
अंतिम बस, रोक सेनापति को लीजिए।
आपका शुभाशीर्वाद ही पर्याप्त है रक्षा
के लिए मेरी।

[कुमार की बात सुनकर महाराज सेनापति की ओर देखते हैं। सेनापति संकेत करता है।]

आंभी

जैसी इच्छा तुम्हारी ; रहना सावधानी से।

(कुमार का अभिवादन करके सेनापति से)

एक सौ विश्वस्त नायकों को रहस्य सारा
समझा कर निकाल दो सेना से 'विद्रोही
हैं ये लोग,' कह कर; जा मिलें कुमार से

वे सब एक-एक करके जाओ।

(सेनापति जाने को प्रस्तुत होता है)

सुनो।

सिकंदर की सेना का समाचार मँगाना

है शीघ्र। सेना का अपनी रंगढंग है क्या ?

गुप्तसेन

महाराज ! आज्ञा आप की शिरोधार्य तो की है

सबने : पर प्रसन्नता से नहीं, दुख से,

आश्चर्य से, विवशता से। रह जाते हैं वे

हाथ मल मल कर, बार बार पीसते

दाँत और काटते ओंठ हैं ! अकुलाते हैं

मदमत्त गज-से, एक अनुशासन के

अंकुश की मार ने रोक रखा है वेग को,

महाराज ! उन्माद अनियंत्रित होने को।

आंभी

अधिकार में रखना है इस बार इन्हें

किसी तरह।

(सहसा पुलकित होजाते हैं)

अशांत होने पावे नहीं ये।

उन्माद की तीव्र ज्वाला को शांति-उपदेशों

की सुशीतल वारिधारा से पल पल में
करते रहो शांत ; जाओ ।

(सेनापति का अभिवादन करके प्रस्थान । महाराज एक क्षण भर उसी ओर देखते रहने के बाद चिंतित से टहलने लगते हैं । खूँटी से लटकती तलवार उतारते, खोलते और देखते है । पश्चात, उसे बंद करके ज्यों की त्यों लटका देते हैं ।

कुछ सोच कर महाप्रतिहार को बुलाते है । अभिवादन करते हुए महाप्रतिहार का प्रवेश ।)

आंभी

महामात्य को शीघ्र बुलाओ ।

महाप्रतिहार

जो आज्ञा, महाराज !

(महाप्रतिहार का प्रस्थान । महाराज पुनः टहलने लगते हैं । फिर खूँटी से लटकती तलवार उतार कर उसे टेक कर खड़े होते है ।)

सूचना मिल चुकी मुझे विजय-नीति की
सिकंदर की । करती लूटमार, लगाती
आग भयंकर, निर्दयी-सी मारती बच्चों
को, अमानुषिक अत्याचार दिखाती स्त्रियों
पर, बिलखाती अनाथ अबलाओं को,

बढ़ रही है सेना उसकी महामारी-सी
प्रचंड से प्रचंडतर, प्रचंडतम हो।

महसा उत्तेजित हो जाते हैं और टहलने लगते हैं। फिर उसी स्थान पर खड़े होकर :

जंग नहीं लगी है आयुधों में हमारे अभी,
चाहते भी थे, पढ़ा देना एक पाठ इसे
वीरता का, दिखा देना, होते वीर कैसे हैं।

(महाप्रतिहार का प्रवेश)

महाप्रतिहार

आते महामात्य सेवा में महाराज की।

(महामात्य का प्रवेश। आगे बढ़कर सादर अभिवादन करके महाराज की गंभीर मुखाकृति से उनके मन का भाव जानने की चेष्टा करते हैं।

महामात्य—

इकहरे शरीर का व्यक्ति। गोरा, लंबा, मुख, सौम्य गंभीरता। पचास वर्ष की अवस्था। दृष्टि पैनी जो हृदय की बात भी ताड़ सकती है।

महाप्रतिहार का प्रस्थान।]

आंभी

पौरवराज और मालवेश के आये थे

पत्र दो। उत्तर लिखना है उनका अभी।

धर्मशील

प्रस्तुत हैं सेवा में महाराज की पत्र ये

(पत्र निकालता है)

आज्ञा की प्रतीक्षा है।

आंभी

स्पष्ट लिख दीजिए—उचित संधि करना
ही समझा है इस समय सिकंदर से
हमने और सेना उसकी कर सकेगी
प्रवेश भारत में होके राज्य में हमारे—
निर्बाधित, निष्कंटक मार्ग रहे उसका,
करने को सुप्रबंध ऐसा बाध्य हुए हैं
हम नियमानुसार।

धर्मशील

(आश्चर्य से)

आज्ञा दे रहे कैसी
यह महाराज हैं! धृष्टता क्षमा मेरी हो,
प्रार्थना विनम्र है, संधि इन यवनों से!
बर्बर विदेशियों से कर रहे आप हैं!

आंभी

सब सोंच कर ही निश्चय किया मैंने है।
सेनापति से मिल कर समझ लीजिए
सारी योजना मेरी।

(महामात्य सर झुकाते हैं)

मगध-नरेश को भी
लिखना यह पत्र—चाहता सिकंदर है
मार्ग भारत-प्रवेश का औ' स्वीकार किया
है प्रस्ताव यह हमने। भारत में आने
दिया जाय इस दंभी विदेशी को यों।
पंचनद-शासक सब पराजित होंगे
उसकी शक्ति से, क्योंकि हो रहे जर्जर हैं
सभी आपसी वैर से। पश्चात, द्वार होगा
बंद उसका और खेल ही खेल में हरा
सकेंगे भारतीय हम इस विदेशी को।

धर्मशील

समझा मैं राजनीति की चालें ये आप की।
भारत के महायुद्ध में विजयी हुए थे
पांडव वीर सहायता से श्रीकृष्ण की
इसी रणनीति की।

आंभी

भेजने के पूर्व हमें
दिखा दीजिएगा एक बार और पत्र ये।

(महामात्य का प्रस्थान)

कूटनीतिज्ञता न अपनाऊँ मैं तो चले
काम कैसे ? क्षणिक आवेश में लोहा लिया
जाय इससे तो लाभ क्या ? ध्वंस कैसे करा
दूँ ऐश्वर्यसंपन्न राज्य इन बर्बरों से ?
विश्व विश्रुत विद्यालय, गौरव भारत का,
ज्ञानागार अभूतपूर्व, मंदिर भारती
का पावन परम, तहसनहस कैसे
होजाने दूँ ?

[महारानी का शीघ्रता से प्रवेश। गांधारनरेश साश्चर्य उसकी ओर देखते हैं।

महारानी--

चालीस वर्ष की अवस्था ; अनुपम रूप-लावण्य। शृंगार ऐसा जिसमें कलापूर्ण सुरुचि का अनुमान हो। मुख पर अद्भुत तेज और ओज है।]

आंभी

यहाँ कैसे पधारीं महारानी !

वसंतसेना

सुना है मैंने, पुत्र को निर्वासित किया है
आप ने राज्य से ; सत्य है यह ?

आंभी

(शांत स्वर में)

हाँ, सत्य है
कठोर यह । पुत्र एकाकी किया हमने
निर्वासित है ।

वसंतसेना

किस लोभ से ? किस स्वार्थ से
अपना रहे राज्य आप सुपुत्र प्राणप्रिय को
त्याग कर ? सुनूँ मैं ।

आंभी

कुटिल राजनीति की
हैं चालें ये महारानी ! न चिंता तुम करो ।
माता हो तुम तो पिता का हृदय है मेरे
भी पास ।

वसंतसेना

समझी ; परंतु राजनीति कैसी
है चाहती जो निर्वासन एकाकी पुत्र का !

समझ मैं मूढ़ चाल यह पा रही नहीं।
समझावें दया करके।

आंभी

यह समस्या है
सैन्यबल की। समर्थ हम आज हैं नहीं
सामना सिकंदर का करने को।

वसंतसेना

करते
क्यों चिंता हैं आप शक्ति की। विश्वास मानिए,
गांधार समस्त साथ देने को हो जायगा
तैयार आपका स्वयं ही।

[महारानी क्षण भर रुक कर महाराज की ओर देखती है। महाराज अप्रभावित-से रहते हैं।]

गांधार के सभी
नर-नारियों की धमनियों में बह रहा
है रक्त उन स्वतंत्रताप्रिय पूर्वजों का
विदेशी शत्रु जिनकी ओर आँख उठाने
का साहस भी नहीं कर सकते थे कभी—
युद्ध की तो बात दूर, बहुत दूर रही;
चिरकाल से ……

आंभी

(बीच में रोक कर)

जा सकती हो साथ तुम भी
महारानी ! स्वपुत्र के विद्रोह करने को
गांधार में ।

महारानी की आकृति से इतना सुनते ही उत्तेजित होजाना प्रकट होता है ।]

पतित हो रहा हूँ मैं अपने
कर्तव्य से, तुम तो पालन करो उसका
देने के लिए संतोष अपनी आत्मा को; औ'
शांति अमर पूर्वजों को ।

(महाराज कुछ मुस्कराने लगते हैं)

वसंतसेना

कह रहे क्या हैं
यह आप ? भारत के प्रथम ही विदेशी
शत्रु का लोहा मानलें आप हँसी उड़ाने
को स्वयं और उड़वाने को दूसरों से भी,
उन पूर्वजों की, चिरकाल से रहते जो
आए हैं स्वतंत्र ? हँसते-हँसते सर्वदा,
खिलवाड़-सा समझ भयानक युद्धों को,

पराजित सुदूर प्रदेशवासियों को जो
करते रहे; नित्य ही अधीन बनाया है
जिन्होंने स्वतंत्रों को स्वतंत्रता का हरण
करके, वरण करके उनकी।

महारानी अधिक उत्तेजित हो जाती है। महाराज एक टक उसकी ओर निहारते रहते हैं। उनके मुख की सहज क्रांति किंचित मलीन हो जाती है।

आंभी

सब समझता हूँ और समझ कर भी
सिकंदर को मार्ग देने को प्रस्तुत होना
पड़ा है मुझे।

वसंतसेना

(पुनः कुछ शांत होकर)

यही तो आह ! कह रही मैं ;
कि संतान उन विश्वविजयी पूर्वजों की
आज स्वयं, बिना भयानक युद्ध किए ही—
युद्ध तो दूर, युद्ध की तैयारी के बिना ही—
केवल प्रस्ताव पर पराधीन होने को
प्रस्तुत हैं आज सहर्ष ; नहीं कल्पना में
आती बात यह ! सुनकर अकथ कथा—

छिपी किसी तरह रह नहीं सकती जो—
कहेगा संसार क्या ?

(महारानी क्षण भर रुक जाती है)

आंभी

(कुछ आगे बढ़कर)

महारानी ऽ ऽ !

वसंतसेना

(पीछे हटकर)

क्षमा करें।
इतना बस और कहना मुझे आपसे—
होगा समाप्त जीवन यह एक दिन और.
गांधार का श्री राजकुल भी मिट जायगा :
परंतु भारत-इतिहास के काले पृष्ठों
पर गांधार की स्वदेश के प्रति क्षुद्रता-
युक्त कृतघ्नता की दुखद यह कहानी
अंकित रह कर अनंत काल तक हा !
भारतवासियों का मुख करती रहेगी
लज्जित।

[महारानी के नेत्रों में आँसू आजाते हैं। वह उन्हें आँचल के छोर से पोछती है। महाराज भी विचलित हो एक पग आगे बढ़

जाते हैं।]

महाराज

कायर जरा नहीं है पुरुष महारानी !
यह सम्मुख खड़ा है जो तुम्हारे ;
पति कहलाने का अधिकारी था जो अभी
तक, परंतु आज अपने को पति तुम्हारा
कहने का साहस नहीं कर सकता जो
जिससे तुम्हें इस संबंध से दुख न हो।

[महाराज रुक कर महारानी की ओर देखते हैं ; उनकी दृष्टि में रोष या उत्तेजना का भाव नहीं है। महारानी उनके मुख की ओर न देख कर विशाल वक्षस्थल की ओर निहारने लगती हैं; आकृति में गंभीरता प्रकट होती है।]

वसंतसेना

आप के संबंध का गौरव रहा है सदा
मुझे और आप भी जानते हैं इसे।

आंभी

(ध्यान न देकर पूर्ववत)

अपने सैन्यबल की शक्ति परिमित से
परिचित हो अवसर सिकंदर को दे
रहा हूँ आगे बढ़ने का कारण जिसका

प्रलोभन क्षुद्र भी तुम कह सकती हो।
परंतु हार्दिक अभिलाषा है मेरी यही
कि विश्व का विजेता कहलाने वाला दंभी
यह लौट न जाय कहीं देश भारत से
पूर्णतः पराजित होजाने के पहले ही;
लालसा भारतीय युद्ध-कौशल देखने
की इसकी रह न जाय कहीं पूरी होने से।

[महारानी पति की ओर अभिमान की ऐसी दृष्टि से देखती हैं जिसमें प्रसन्नता है, गर्व है और चमत्कार-जनित आश्चर्य भी। महाराज भी एक बार उनकी ओर देखते हैं; परंतु उनकी आकृति अपरिवर्तित रहती है।]

वसंतसेना

(जैसे उल्लास को दबा रही हो)

महाराज! मैं समझती थी·····।

आंभी

(अपरिवर्तित स्वर में)

भारत में, जानता हूँ मैं, इस विदेशी की,
वीर आक्रमणकारी शत्रु की, निश्चित है
पराजय पूर्ण। वीरप्रसविनी भूमि के
आर्य वीरों के आगे टिक न सकेगी कभी

विश्वविजयिनी वह सेना सिकंदर की
गर्वोन्मत हो आज नृशंस बन रही है,
अमानुषिक अत्याचार क्रूर करने को
उतावली है जो ; दिखा रही पैशाचिकता-
युक्त बर्बरता अपनी घोर करने को
कलंकित अपने को, जाति को, संस्कृति के
नाम को और गौरव को अपने देश के।

[महाराज का स्वर एक बार किंचित उत्तेजित होकर पुन गंभीर हो जाता है। महारानी संतुष्ट-सी उनकी ओर देखती है : उनके मुख पर गर्व की एक झलक दिखाई देती है।

वसंतसेना

उचित जो समझें, करें ; लोकापवाद से
परंतु न बचेगा राजकुल गांधार का
और·····और·····।

आंभी

(किंचित मुस्करा कर)

राजनीति की दृष्टि से बातें ये
साधारण हैं बहुत।

(कुछ ठहर कर)

गांधार-गौरव की

वृद्धि के लिए ही प्रस्थान किया है तुम्हारे
चिरंजीव सुकुमार ने, निर्वासन जिसे
तुम समझ रही हो और प्रयत्न यही
है हमारा कि शत्रु भी ऐसा ही समझ ले।
पति पर न सही, सुपुत्र पर तो तुम्हें
होना चाहिए अभिमान।

महाराज हँस देते हैं। महारानी सलज्ज पति की ओर देखती है : इनकी दृष्टि में गर्व का कांतियुक्त चमत्कार प्रतिबिंबित है; इनका सर झुक जाता है।]

वसंतसेना

(सप्रेम दृष्टि से देखती हुई)

रक्षा का उसकी किया है प्रबंध आप ने ?

आंभी

वीर प्रसविनी को चिंता है वीर पुत्र की
रक्षा की ?

[महाराज मुस्करा कर उनकी ओर देखते हैं। महारानी हँसकर सर नीचा कर लेती हैं।]

आंभी

सुकुमार तुम्हारा सुरक्षित हैं ;
निश्चिंत रहो। पिता को भी चिंता है पुत्र की।

(महाप्रतिहार का प्रवेश)

महाप्रतिहार

(अभिवादन करके)

महाराज की सेवा में महामात्य आने की
चाहते हैं आज्ञा ।

आंभी

आने दो ।

(महाप्रतिहार का प्रस्थान)

वसंतसेना

आज्ञा हो मुझे भी ।

[महाराज सर हिलाकर स्वीकृति देते हैं । महारानी जिस द्वार से आई थीं उसी से उनका प्रस्थान । महाराज उनके जाते ही गंभीर होकर सिंहासन पर बैठ जाते हैं ।

महामात्य का हाथ में कई पत्र लिए प्रवेश । महाराज उनकी ओर कुछ सोचते हुए देखते हैं ।]

महामात्य

पत्र प्रस्तुत हैं सभी ये ।

[महामात्य सभी पत्र महाराज की ओर बढ़ाते हैं । महाराज उन्हें पढ़ने लगते हैं । महामात्य कभी उनकी ओर देखते हैं और कभी दीवार से लटकते हुए आयुधों की ओर ।

क्षण भर बाद महाराज पत्र महामात्य को लौटा देते हैं और स्वयं खड़े हो जाते हैं।]

आंभी

गुप्त दूत जायगा मगध को शीघ्रगामी
अश्व पर।

महामात्य

जो आज्ञा। गुप्तचर भी रहेंगे
गांधारी साथ उसके।

आंभी

(संतोष-स्वीकृति के साथ)

उचित है प्रबंध।

[महामात्य का प्रस्थान। महाराज टहलने लगते हैं। जिस द्वार से महामात्य गए थे उसी से महाप्रतिहार का प्रवेश।]

महाप्रतिहार

(अभिवादन के बाद)

महाराज ! प्रतीक्षा में सेनापति हैं आज्ञा की
द्वार पर साथ एक युवक के।

आंभी

बुलाओ।

[सेनापति का सर्वदमन के साथ प्रवेश। दोनों महाराज को

सादर अभिवादन करते हैं। महाराज सिंहासन पर बैठ जाते हैं : वे दोनों खड़े रहते हैं।

सर्वदमन—

तक्षशिला विश्वविद्यालय की छात्र-परिषद् का सभापति। शिक्षा के अंतिम वर्ष का स्नातक। चौबीस वर्ष की अवस्था : शरीर सुगठित: गौर वर्ण के मुखमंडल पर ब्रह्मचर्य का प्रदीप्त तेज। वीर वेश में तलवार बाँधे। महाराज के सामने कुछ बाईं ओर हट कर खड़ा होता है।

सेनापति उसके ठीक सामने, महाराज के दाईं ओर गंभीर मुद्रा में खड़ा है।]

आंभी

(मुस्कराकर)

प्रसन्न हो सर्वदमन और सुखी हैं सभी
छात्र विद्यालय के ?

सर्वदमन

(हाथ जोड़ कर सादर)

दया महाराज की है।

आंभी

कैसे पधारे ?

सर्वदमन

एक निवेदन करने को
सेवा में महाराज ! आया हूँ।

आंभी

(प्रश्न सूचक मुद्रा में परंतु मुस्कराते हुए)

चाहते क्या हो ?

सर्वदमन

यवन सेनानी सिकंदर, सुना है हमने,
अनुमति चाहते हैं स्वदेश भारत में
प्रवेश करने की महाराज से ; जायँगे
वे होकर गांधार से और स्वीकार किया
है गांधारपति ने प्रस्ताव उनका ; देने
को मार्ग उसे प्रस्तुत हैं।

आंभी

(गंभीर होकर)

यथार्थ सब है।
कुछ कारणों से स्वीकारा प्रस्ताव हमने
है सिकंदर का।

सर्वदमन

तो महाराज विनय है

कि निवेदन हमारा भी एक स्वीकार लें।
आज्ञा दें सेनापति को प्राण हर लेने की
सभी गांधारी युवकों के शिक्षा जो पाते हैं
विश्वविद्यालय में तक्षशिला के।

[महाराज गंभीर दृष्टि से एक बार सेनापति की ओर देखते हैं परंतु सेनापति की दृष्टि सर्वदमन पर गड़ी है। सर्वदमन महाराज के हाथ जोड़ता है।]

आंभी

गर्व है,
मुझे सर्वदमन गांधारी नवयुवकों
पर; तब क्यों चाहते हो ऐसा ?

सर्वदमन

क्षमा करें
महाराज ! धृष्टता यह कि पराधीनों सा
जीवन बिताना नहीं सीखा अभी हमने ;
आत्माभिमान से ऊँचा सर, ऊँची पलकें
कर विचरते रहे हैं हम सर्वदा ही।
परंतु आज, महाराज ! मस्तक झुकाना
पड़ेगा हमें यवन विदेशियों के आगे
और सो भी संकेत से महाराज आप के !

न, राजाधिराज ऐसा दुर्दिन देखने को
जीवित न रहने दीजिए हमें।

सर्वदमन महराज के पुनः हाथ जोड़ता है। महाराज की गंभीरता जैसे विचलित हो जाती है। वे सेनापति की ओर देखकर कुछ संकेत करते हैं।

गुप्तसेन

कितने
युवक सैनिक शिक्षा आज विद्यालय में
तुम्हारे पा रहे हैं ?

सर्वदमन

(प्रकृतिस्थ होकर सेनापति से)

नियमित रूप से तो
केवल दो सहस्र ; परंतु पिछले चारों
मास से अधिक ध्यान दिया जाने लगा है
सैनिक शिक्षा की ओर और पाँच सहस्रों
से अधिक छात्र बन रहे सैनिक नए,
खेलने को खेल वीरों के ही युद्ध-क्षेत्र में
समोद और सोत्साह।

गुप्तसेन

इनमें कितने हैं

इस प्रांत के ; कितने विदेशी ?

सर्वदमन

पाँच सौ के
लगभग हैं निकटवर्ती विदेशों के जो
सीख रहे हैं साभिप्राय भारतीय कला
युद्ध की। एक सहस्र छात्र हैं भारत के
भिन्न प्रांतीय ; शेष सब गांधारी जन हैं।

गुप्तसेन

मनोवृत्ति क्या है अन्य प्रांत-देशवालों की
इस समय ?

सर्वदमन

(महाराज की ओर देखकर)

आह ! महाराज कष्टदायी
सबसे यही है बात। कल तक हमारे
जो थे घनिष्ट मित्र आज वे छात्र विदेशी
हमें देखते ही निरस्त हो मुस्कराने हैं
लगते परस्पर संकेत कर करके;
और भारत के अन्य प्रांत वाले भी हमें
देख रहे हैं अति हेय दृष्टि से, करने
को अधिक लज्जित हमें किया है अपना

सुसंगठन उन्होंने मालवीय अध्यक्ष की
अधीनता में विरोध विदेशी यवनों का
करने के लिए।

[सर्वदमन कुछ क्षण के लिए शांत हो जाता है। महाराज सेनापति की ओर देखते हैं। सर्वदमन भी उन्हीं का अनुसरण करता है।]

गुप्तसेन

(महाराज से)

सूचना मिल चुकी मुझे
है इसकी बहुत पहले। निवेदन भी
किया था मैंने महाराज से।

आंभी

याद है मुझे।

सर्वदमन

इस लिए निवेदन है, महाराज ! हमें
आज्ञा दीजिए लेने को लोहा विदेशियों से
अथवा जीवित न रहने दीजिए हमें
ढोने की असह्य भार पराधीनता का, औ'
सहने को कटाक्ष स्वदेशी-विदेशी मित्रों के

(महाप्रतिहार का प्रवेश)

महाप्रतिहार

(साभिवादन)

द्वार पर महामात्य के साथ ही दूत है
एक सिकंदर विदेशी का।

[सर्वदमन चौंक कर बारी-बारी से महाराज और सेनापति की ओर देखता है। सेनापति एक दृष्टि महाप्रतिहार पर डाल महाराज की ओर देखने लगता है।]

आंभी

बुलाओ यहीं।

[महाप्रतिहार का प्रस्थान। महाराज भेदभरी दृष्टि सेनापति पर डालते हैं।]

गुप्तसेन

इस दूत ने प्रस्थान किया था शिविर से
यवनों के कल प्रातःकाल। चरों से तभी
सूचना मिली थी मुझे।

[महामात्य का यवन-दूत के साथ प्रवेश। महामात्य की तरह दूत अभिवादन करता है।

यवनदूत—

ऊँचे कद का गौर वर्णवाला व्यक्ति। अवस्था लगभग पैंतीस वर्ष। योद्धा-सा वेश। हाथ में एक पत्र लिए। प्रवेश करते ही एक

वह कमरे के चारों ओर देखता है।

महाराज सिंहासन पर हैं; शेष चारों व्यक्ति खड़े रहते हैं। महामात्य महाराज के समीप हैं।

यवनदूत

महाराज की सेवा
में भेजा है पत्र यह वीर विश्व विजेता
सम्राट सिकंदर ने। आज्ञा दी है मुझे
उत्तर लाने की।

[सविनय पत्र महाराज को देता है। महाराज लेकर उसे महामात्य की ओर बढ़ा देते हैं।]

धर्मशील

(पत्र पढ़ने के पश्चात)

दो सहस्र वीर भेजने को
लिखा है युद्ध के लिए।

[दूत दीवारों की चित्रकारी पर एक दृष्टि डालकर महामात्य की ओर देखता है।]

आंभी

(सेनापति की ओर देख कर)

विश्रामगृह में ले
जाने को इन्हें कहो किसी से। पश्चात् देना

उत्तर है।

(सेनापति का दूत के साथ प्रस्थान)

आंभी

प्रतीक्षा कर रहा था मैं इसी
पत्र की। जानता था कि सिकंदर लिखेगा
सेना के लिए।

(सर्वदमन की ओर देखते हैं)

सर्वदमन

महाराज· क्षमा करें· छोटे
मुँह बड़ी बात यदि निकल जाय कभी
मुख से मेरे। सेना पाँच सहस्र दे देने
पर कट जायँगे हाथ हमारे। जा पड़े
हम हैं यवन विदेशियों के चंगुल में।
पतन यह गांधार का कलंक समझा
जायगा स्वतंत्र स्वदेश-गौरव के लिए।

(सेनापति का प्रवेश)

आंभी

उद्विग्न न हो युवक ; केवल मार्ग देने
से पतन नहीं होगा गांधार का ; मेरा भी
जन्म हुआ है इसी देश में।

(मुस्करा देते हैं)

निश्चिंत रहो ;
संगठन के साथ अनुशासन चाहिए
तुममें। देश को आवश्यकता होगी कभी
तुम्हारी। जाओ।

(सर्वदमन का अभिवादन करके प्रस्थान)

आंभी

(सेनापति की ओर देख कर)

कहता कुछ और दूत था ?

गुप्तसेन

उत्साहित बहुत है
सिकंदर इस भारत-विजय के लिए ;
और पंचनद-प्रवेश के विभाजन ने
हौसला बढ़ा दिया है उसका। आशंका
फिर भी है उसे अपनी विजय की कैसे
पराजित किया जा सकेगा चिर स्वतंत्रों
का देश यह।

आंभी

(महामात्य से)

लिख दीजिए सिकंदर को—
सेना अभीष्ट शीघ्र ही जायगी सहायता
के लिए आपकी।

(महामात्य का प्रस्थान)

(सेनापति से)

पौरव वीर की योजना
है लोहा सिकंदर से लेने की। देखना है
कितनी शक्ति एकत्र कर ली है उन्होंने।
तक्षशिला पर इस समय दृष्टि रखो।
मिलकर चुने हुए युवक गांधार के
भेज दो कुमार के पास। यवनों की सेना
के अग्रसर होने में डालें बाधा वीर ये
हरने में धन-जन उपकरण सभी.
नष्ट, हो जायँ स्वयं ये।

[सेनापति का प्रस्थान : महाराज सिंहासन से उठ कर लगते हैं।]

क्या बुरा किया मैने ?
देशद्रोही भारतीय कहलाऊँगा क्या मैं ?

(दीवार से तलवार उतार कर)

स्वतंत्रते देवि ! कंज चरणों पर तेरे
दिया डाल प्राणप्रिय पुत्र है। भारत की
और मेरी भी लाज अब हाथ तेरे ही।